www.terapanthinfo.com

इस अंक में

अहिंसक-नैतिक चेतना का अग्रदूत पाक्षिक

अणुव्रत

वर्ष : 56 ■ अंक : 21 ■ 1-15 सितंबर, 2011

संपादक : डॉ. महेन्द्र कर्णावट
सहयोगी संपादक : निर्मल एम. रांका

अणुव्रत में प्रकाशित रचनाकारों द्वारा व्यक्त विचारों से संपादक/प्रकाशक की सहमति आवश्यक नहीं है।

❒ सदस्यता शुल्क :

- एक प्रति : बारह रु.
- वार्षिक : 300 रु.
- त्रैवार्षिक : 700 रु.
- दस वर्षीय : 2000 रु.

❒ विज्ञापन सहयोग :

- द्वितीय मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 10,000 रु.
- तृतीय मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 10,000 रु.
- चतुर्थ मुख पृष्ठ 'रंगीन' : 20,000 रु.
- साधारण पृष्ठ 'पूरा' : 5,000 रु.
- साधारण पृष्ठ 'आधा' : 3,000 रु.

❒ सम्पर्क सूत्र :

अणुव्रत महासमिति
अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली–110002

दूरभाष : (011) 23233345
फैक्स : (011) 23239963

E-mail : anuvrat_mahasamiti@yahoo.com
Website : anuvratinfo.org

◆ शिक्षा का स्वरूप	*आचार्य महाप्रज्ञ*	3
◆ मस्तिष्क प्रशिक्षण की प्रक्रिया	*आचार्य महाप्रज्ञ*	5
◆ अच्छा विद्यार्थी	*आचार्य महाश्रमण*	9
◆ विचार से दूर जाती शिक्षा	*प्रो. यशपाल*	11
◆ शिक्षा के सामूहिक स्वरूप में आचरण का प्रशिक्षण	*सविता लखोटिया*	13
◆ शिक्षा की अनिवार्यता	*प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा*	15
◆ आधुनिक शिक्षा का कड़वा सच	*अशोक सहजानन्द*	18
◆ भविष्य उज्जवल बना रहे	*कौशल मिश्र*	20
◆ क्यों मारते हो मास्साब ?	*डॉ. विनोद गुप्ता*	21
◆ शिक्षा के कार्यों, लक्ष्यों एवं मूल्यों की अवगति	*डॉ. गिरीश कुमार शर्मा*	23
◆ शैक्षणिक अनुशासन, माहौल और चिन्तन	*जनार्दन शर्मा*	25
◆ पूर्व बुनियादी शिक्षा : धुंधली प्राथमिकताएं	*दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'*	26
◆ कसौटी	*जयनारायण गौड़*	29
◆ प्राथमिक शिक्षा का गिरता स्तर	*डॉ. रामप्रताप गुप्ता*	31
◆ अणुव्रत अधिवेशन-2011	*विजयराज सुराणा*	33

■ स्तंभ

◆ संपादकीय	2
◆ कविता	22
◆ राष्ट्र चिंतन	24
◆ प्रेरणा	8, 12, 17, 28
◆ अणुव्रत उद्‌बोधन सप्ताह कार्यक्रम	30
◆ झांकी है हिन्दुस्तान की	34
◆ अणुव्रत आंदोलन	33-39
◆ अध्यक्ष की कलम से	40

www.terapanthinfo.com

संपादकीय

शिक्षा को मूल्यों से जोड़ें

अणुव्रत पाक्षिक का यह अंक वर्तमान शिक्षा के संदर्भ में विविध विचारों से युक्त है। शिक्षा कैसी हो, किस उम्र से हो, किस भाषा में हो इत्यादि प्रश्नों पर विगत छः दशक से शिक्षाविद् अपनी बहस जारी रखे हैं पर अभी तक सर्वसम्मत राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण नहीं हो पाया। इसी का फायदा उठा सत्तारूढ़ दल शिक्षा नीति के साथ जो खिलवाड़ कर रहे हैं उसके दुष्परिणाम बालपीढ़ी को भोगने पड़ रहे हैं। इससे बचपन प्रयोगशाला बनता जा रहा है और बालपीढ़ी अवसाद के अंधेरे में डूब रही है।

द्वितीय आम चुनाव (1957) के समय पत्रकारों ने प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरु से प्रश्न किया इस बार भी कांग्रेस ने अधिकतर उन व्यक्तियों को चुनाव में उतारा है जो कम पढ़े-लिखे हैं। ऐसा क्यों? पं. नेहरु ने प्रश्न को समाहित करते हुए कहा हमें अभी देश का निर्माण करना है। भारतीय संसद और विधानमंडलों में उन राष्ट्र प्रचेताओं की आवश्यकता है जो देश के विकास कार्य में रूचि रखते हों। वे व्यक्ति नहीं चाहिये जो संसद और विधानमंडलों को केवल बहस स्थल बना दें और सेवा को गौण कर दें।

लोकनायक पं. नेहरू के उक्त उत्तर में हम वर्तमान को देखें। आज भारतीय संसद-विधानमंडलों में अधिकतम जनप्रतिनिधि उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, जिन्होंने संवैधानिक संस्थाओं की मर्यादाओं को न सिर्फ धूल-धूसरित किया है वरन् राजनीति को व्यापार बना भ्रष्टाचार की गंगा प्रवाहित की है। ये जन-प्रतिनिधि उन शिक्षा संस्थानों की उपज है जो करोड़ों रुपए की आय प्रतिवर्ष करते हैं और लाखों रुपये शिक्षण शुल्क के लेते हैं।

किसी ने अपने बेटे-बेटियों को लाखों रुपए खर्च कर ऊँची शिक्षा इसलिये नहीं दिलाई कि वह समाज सुधार का काम करें। शिक्षा को आज व्यवसाय के साथ जोड़ दिया गया है। इतना रुपया शिक्षा पर खर्च हुआ है, पढ़-लिख कर उन्हें इससे हजार गुना वापिस कमाना है अर्थात शिक्षा के माध्यम से धन कमाने वाली मशीनें पैदा कर रहे हैं हम। अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ के शब्दों में **''ऐसी शिक्षा समाज को डाक्टर, इंजीनियर, प्रोफेसर, वकील आदि भले ही दे, समाज का पथ दर्शन देने वाला रहनुमा न दे पाएगी। शिक्षा से धनार्जन का उद्देश्य ही निकाल देना चाहिए। प्राचीन काल में शिक्षा को मुक्ति का साधन माना जाता था। जब से इस उद्देश्य को गौण किया जाने लगा, विकृति आनी शुरू हो गई और आज उसका चरम रूप देखने में आ रहा है। भ्रष्टाचार की गंगोत्री हिमालय से नहीं निकली है, यह निकली है राजनीति के शिखर से, बुद्धि के पैनेपन से। बुद्धि को तीक्ष्ण करते जाओ और भावधारा तथा चेतना की उपेक्षा करते जाओ तो परिणाम वही आएगा, जो आज आ रहा है।''**

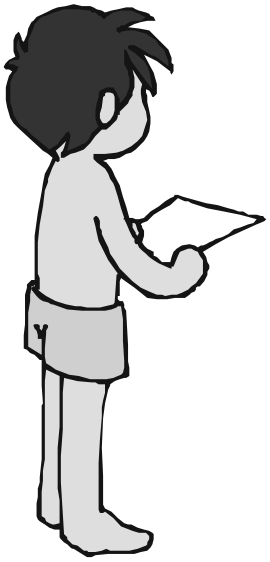

एक महिला अपने पुत्र को टॉलस्टाय के पास लेकर आई और पूछा 'इसकी शिक्षा का प्रारंभ किस आयु से करुं?'

टॉलस्टाय ने पूछा 'कितने वर्ष का है?' उत्तर मिला चार वर्ष।

टॉलस्टाय ने कहा 'माँ! तुमने चार वर्ष की देरी कर दी है। शिक्षा तो गर्भकाल से ही शुरु हो जानी चाहिए।'

हमारे साथ भी यही हुआ है। हमने भी बहुत देरी कर दी है। शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ जो भूल हमने की है उसे सुधारा जाना चाहिए। केवल बौद्धिक विलास से स्वस्थ समाज नहीं बनेगा अब मूल्य परक शिक्षा पाठ्यक्रम का स्थायी निर्धारण कर बालपीढ़ी के भविष्य को संवारने का अभिक्रम प्रारंभ करने की राजनैतिक इच्छाशक्ति का संकल्प व्यक्त होना चाहिए।

● डॉ. महेन्द्र कर्णावट

www.terapanthinfo.com

शिक्षा का स्वरूप

त्याग, संयम और स्वार्थ के समीकरण के बिना कोई भी व्यक्ति निर्मल और उपयोगी नहीं बनता। वर्तमान शिक्षा मुख्य रूप से गतिशीलता की शिक्षा है। मूल्य-परक शिक्षा निर्मलता और उपयोगिता की शिक्षा है। दोनों अलग-अलग रहें तो समग्र व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। उनके समन्वय की अपेक्षा है।

आचार्य महाप्रज्ञ

सर्वांगीण विकास के लिए सर्वांगीण शिक्षा की आवश्यकता है। उसमें पदार्थ विकास और चेतना का विकास–दोनों का प्रशिक्षण देना आवश्यक है। यह पद्धति जीवन का विज्ञान अथवा जीने की कला है। शिक्षा का कार्य विद्यार्थी को केवल बौद्धिक और कर्मकुशल बनाना ही नहीं है, अपितु उसे समाज के लिए उपयोगी बनाना भी है। वैयक्तिक सुख-सुविधा और धन-संग्रह को सर्वस्व मानने वाला व्यक्ति समाज के लिए उपयोगी नहीं हो सकता।

त्याग, संयम और स्वार्थ के समीकरण के बिना कोई भी व्यक्ति निर्मल और उपयोगी नहीं बनता। वर्तमान शिक्षा मुख्य रूप से गतिशीलता की शिक्षा है। मूल्य-परक शिक्षा निर्मलता और उपयोगिता की शिक्षा है। दोनों अलग-अलग रहें तो समग्र व्यक्तित्व का विकास नहीं हो सकता। उनके समन्वय की अपेक्षा है।

व्यक्तित्व का रूपान्तरण अथवा चरित्र का विकास केवल बौद्धिक शिक्षा से संभव नहीं है। बौद्धिक विकास और मानसिक विकास एक नहीं है। बौद्धिक विकास बढ़े, स्मृति, कल्पना और चिन्तनात्मक मानसिक विकास बढ़े, इस दिशा में शिक्षा को सक्रिय होना है। मानसिक विकास का एक दूसरा पहलू और है। धृति, सहिष्णुता और मनोबल की वृद्धि होना, यह मानसिक पक्ष शिक्षा के क्षेत्र में उपेक्षित है। इसलिए शिक्षा असंतुलित व्यक्तित्व का निर्माण कर रही है। शिक्षा जगत में चेतना और मस्तिष्क विद्या की उपेक्षा हुई है इसलिए व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की बात उसमें नही जुड़ पाई। शिक्षा का काम है–विद्यार्थी में अनुकूल और प्रतिकूल–दोनों प्रकार की परिस्थितियों

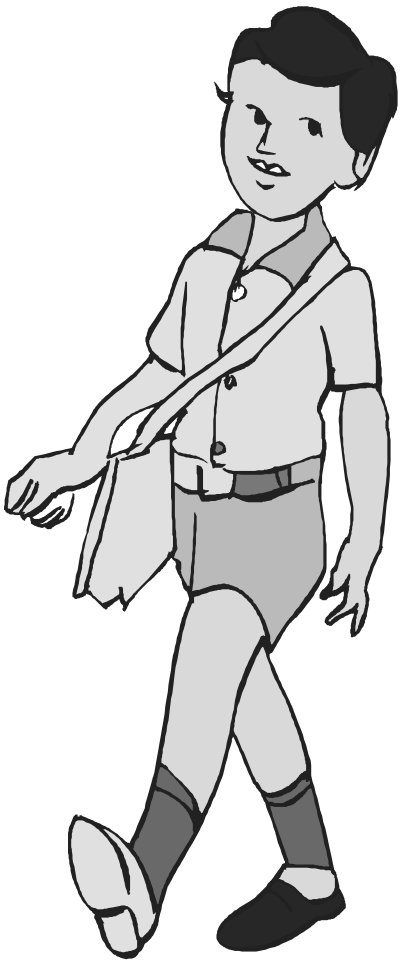

को झेलने की क्षमता पैदा करना। वर्तमान शिक्षा बौद्धिकता के विभिन्न पक्षों को विकसित करने में सफल रही है। आज का शिक्षित व्यक्ति चिन्तन के क्षेत्र में पीछे नहीं है। कार्मिक दक्षता के क्षेत्र में वह बहुत आगे है। जीविकोपार्जन के नए-नए आयाम खोलने में उसने गति की है। बहुत सारे विद्यालय विद्यार्थी को अनुशासित करने में भी सफल हुए हैं। इस सफलता की पृष्ठभूमि में आंतरिक योग्यता और बाहरी वातावरण दोनों का योग मिला है। इतना होने पर भी जो कुछ शेष है उस पर शिक्षा-जगत का ध्यान आकर्षित होना चाहिए। व्यक्ति की मानसिक शांति और सामाजिक सुव्यवस्था आंतरिक और बाहरी परिष्कार से ही संभव हो सकती है।

शिक्षा का उद्देश्य अच्छे वातावरण में रखकर विद्यार्थी को अच्छा बनाया जाये, इतना ही नहीं होना चाहिए। उसका उद्देश्य होना चाहिए संस्कार-बीज का परिष्कार। भय, अहंकार, क्रोध, लोभ, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और वासना के संस्कार–बीज प्रत्येक बच्चे में होते हैं। उसे जीविकोपयोगी विद्या के साथ वह विद्या भी पढ़ाई जाए, जिससे वह अपने संस्कारों का परिष्कार करता रहे।

संस्कार का संबंध पूर्वजन्म के साथ है। एक बच्चा पूर्वजन्म से अपने साथ संस्कार-बीज लेकर आता है। शिक्षा प्रणाली में पूर्वजन्म का सिद्धान्त सबको मान्य हो, यह अनिवार्य नहीं। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का प्रश्न दर्शन और धर्म के क्षेत्र का प्रश्न है। क्या यह शिक्षा के क्षेत्र का प्रश्न नहीं है? सहज ही यह चिन्तन स्फुरित हो सकता है कि शिक्षा पर विचार करते समय हमें इस प्रश्न की गहराई में जाना चाहिए। यह प्रश्न दर्शन, काव्यानुशासन,मनोविज्ञान, परामनोविज्ञान और आनुवंशिकी सबके परिप्रेक्ष्य में आलोचनीय है।

दर्शन की दो धाराएँ हैं। एक धारा

www.terapanthinfo.com

में पुनर्जन्म मान्य है। दूसरी धारा में वह मान्य नहीं है। दार्शनिक दृष्टि से दोनों धाराओं की शिक्षा का आधार भिन्न है, फिर भी एक बिंदु पर दोनों एक आसन पर बैठ जाते हैं। वह बिंदु है नैतिकता। सामाजिक जीवन में नैतिकता का मूल्य सबके लिए है। समाज-जीवन के तीन आधार-स्तम्भ हैं—पारस्परिकता, नैतिकता और मानवीय संबंध। शिक्षा के द्वारा ये फलित होने चाहिए। फल मूल के अनुरूप ही होता है। विद्यार्थी को जीने की कला सिखाई जाए, शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य का बोध कराया जाए तो नैतिकता के प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न हो सकता है।

अर्थ के अति आकर्षण ने नैतिकता के दृष्टिकोण को धूमिल बना दिया है। व्यापार, उद्योग, शासन और प्रशासन—इन सब में नैतिक मूल्यों की अवहेलना हो रही है। सुविधा के साधना की स्पर्धा, गरीबी, महंगाई और अनैतिकता के पनपने के लिए उर्वर भूमि बनी हुई है। यह वास्तविकता का एक पहलू है। इसका दूसरा पहलू यह है कि विद्यार्थी को प्रारम्भ से ही नैतिक मूल्यों तथा उनके लाभालाभ से परिचित नही कराया जाता।

विश्वविद्यालय के प्रांगण में यत्र-तत्र मूल्यपरक शिक्षा का स्वर सुनाई दे रहा है। यह नैतिकता की शिक्षा का नया संस्कार है। यह स्तर बौद्धिक शिक्षा की अपर्याप्तता से उपजा हुआ है। जीवन-रथ को केवल बौद्धिकता के चक्र पर नहीं चलाया जा सकता। उसको गतिमान बनाने के लिए नियंत्रण का चक्र भी आवश्यक है। मानसिक आकांक्षाओं, इन्द्रियों की उच्छृंखल माँगों और मानसिक विक्षेपों पर नियंत्रण करने की विधि सीखे बिना विद्यार्थी मानसिक अनुशासन और मानसिक शान्ति के उपयुक्त नहीं बनता।

अर्थार्जन के प्रति आकर्षण इसलिए है कि उसका फल प्रत्यक्ष है। नैतिकता, आर्थिक पवित्रता और सदाचार के प्रति आकर्षण इसलिए नहीं है कि इनका फल प्रत्यक्ष नहीं है। इनका जो फल मिलता है वह भी परोक्ष जैसा ही है, इसलिए उनके प्रति निष्ठा पैदा करने का कार्य अपेक्षाकृत सरल है। आयु की परिपक्वता, व्यावसायिक स्पर्धा और सुविधा की उत्कृष्ट लालसा होने पर निष्ठा का निर्माण जटिल होता है। विद्यार्थी जीवन में आयु की अपरिपक्वता होती है, व्यावसायिक स्पर्धा में वह उतरता नहीं है और सुविधा के साधनों के प्रति भी प्रबल मनोभाव नहीं बनता इसलिए उसमें नए संस्कार का निर्माण करना बहुत जटिल नहीं होता।

शिक्षा का कार्य है अच्छे संस्कार का निर्माण, अच्छी आदतों का निर्माण और अच्छे चरित्र का निर्माण। केवल जीविकोपार्जन शिक्षा के द्वारा वह संभव नहीं है। अनुशासनहीनता और चारित्रिक ह्रास की अनुभूति समाज को हो रही है, उसका हेतु केवल जीविकोपयोगी शिक्षा है। विद्यार्थी का मस्तिष्क अर्थार्जन तथा सुविधा के साधनों की प्रचुरता की शिक्षा से ही शिक्षित होगा, उसमें चरित्र और नैतिकता का कोष्ठ सुषुप्त ही रह जाएगा।

नई पीढ़ी का निर्माण करने के लिए नई दिशा की खोज और नए जीवन-दर्शन की व्याख्या करनी होगी। नई दिशा का सूत्र होगा—भौतिक और आध्यात्मिक दृष्टिकोण का संतुलन। नए मनुष्य के जन्म का सूत्र होगा—आध्यात्मिक और वैज्ञानिक व्यक्तित्व का जन्म। केवल भौतिकता की दिशा में चलने का परिणाम है नैतिकता का ह्रास, मानवीय संबंधों में कटुता, संघर्षमय और संहारक शस्त्रों का निर्माण। इस स्थिति को एक नई दिशा का निर्माण करके ही बदला जा सकता है। केवल आध्यात्मिकता से जीवन के लिए उपयोगी साधन-सामग्री नहीं जुटाई जा सकती। केवल भौतिकता से जीवन अच्छा नहीं चलता। अतः सामाजिक मनुष्य के लिए भौतिक और आध्यात्मिक दोनों में संतुलन स्थापित करना अपेक्षित है।

वैज्ञानिक शोधों ने अनेक-अनेक अंधविश्वासों को दूर किया है। अब धर्म और अध्यात्म को भी वैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना जरूरी है। धर्म और अध्यात्म का पहला सूत्र है—सम्यक दृष्टिकोण। वैज्ञानिक दृष्टिकोण का हृदय है—सत्य की खोज निरंतर चालू रहे, खोज का दरवाजा बन्द न हो। सम्यक दृष्टिकोण का मर्म भी यही है। धर्म का दूसरा सूत्र है—सम्यक आचरण। यह भौतिक-विज्ञान का विषय नहीं है। केवल सत्य की खोज का दृष्टिकोण जीवन विकास के लिए पर्याप्त नहीं है। इसके लिए सम्यक आचरण का पक्ष बहुत जरूरी है। आध्यात्मिक-वैज्ञानिक व्यक्तित्व का अर्थ होगा—वह व्यक्ति जिसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है, सत्य की खोज के लिए समर्पित है और जिसका आचरण आध्यात्मिक है। ये दोनों पक्ष व्यक्तित्व को सर्वांगीण बनाते हैं। केवल आध्यात्मिक और केवल वैज्ञानिक-इस विभाजन ने अनेक समस्याएँ उत्पन्न की हैं। केवल आध्यात्मिक है और दृष्टिकोण वैज्ञानिक नहीं है, उसमें रूढ़िवाद, अंधविश्वास आदि पनप जाते हैं। केवल वैज्ञानिक है, आध्यात्मिक नहीं है, उसमें मानसिक संतुलन, असंतोष, पदार्थाभिमुखता आदि पनप जाते हैं। नई पीढ़ी में यह विभाजन रेखा समाप्त होनी चाहिए। एक ही व्यक्ति आध्यात्मिक और वैज्ञानिक होना चाहिए।

नई पीढ़ी के निर्माण का तात्पर्य है—इन अवधारणाओं से युक्त मनुष्य और समाज का निर्माण। इसका साधन होगा—समन्वयवादी दृष्टिकोण, अपने भीतर झांकने का उपक्रम, अहिंसा का प्रशिक्षण, मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास, अणुव्रत की आचार-संहिता का अनुशीलन और अभ्यास,सहिष्णुता, अनुशासन और कर्त्तव्यनिष्ठा की अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग। यह प्रयत्न स्वस्थ समाज रचना और स्वस्थ व्यक्ति निर्माण की दिशा में एक साथ चले तो नई पीढ़ी के निर्माण की कल्पना साकार हो सकती है।

www.terapanthinfo.com

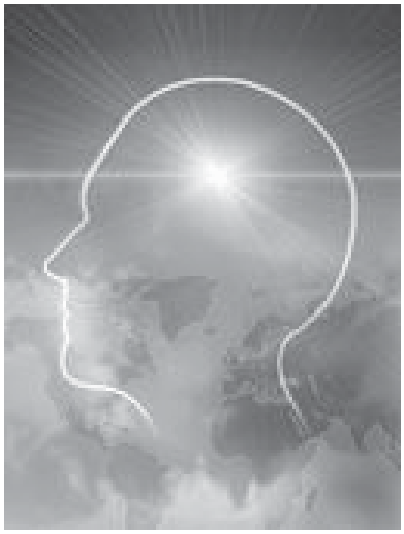

मस्तिष्क प्रशिक्षण की प्रक्रिया - जीवन विज्ञान

आचार्य महाप्रज्ञ

गुजरात यात्रा के दौरान हम एक विद्यालय में ठहरे, जिसका सारा प्रबन्धन और संचालन मुस्लिम समाज के हाथों में था। वहां हमारी गोष्ठी हो रही थी। कुछ प्रबुद्ध लोग पास में बैठे थे। जब साम्प्रदायिक सौहार्द की चर्चा चली तो मैंने वहां उपस्थित बौद्धिक मुस्लिम भाई से कहा–''न तो आप हिन्दुस्तान छोड़कर जाने वाले हैं, न हिन्दू लोग हिन्दुस्तान छोड़कर जाएंगे। फिर मिलजुलकर रहने में क्या कठिनाई है?'' उस भाई ने कहा–''आचार्यजी! मैं अभी विश्व की यात्रा करके आया हूँ, पर हिन्दुस्तान जैसा सुन्दर देश दुनिया में मुझे कहीं नहीं मिला।''

हम जानते हैं और मानते भी हैं कि यहां जो संस्कृति है, उसमें हजारों- हजारों वर्षों के मानवीय मूल्यों का और मानव-हितों का अवदान है, वैसा अन्यत्र मिलना बहुत मुश्किल है। किन्तु कभी-कभी ऐसा होता है कि स्वर्णशिखर भी धूल से ढक जाता है। उसका पता नहीं चल पाता। बाहर से देखने पर धूल-ही-धूल दिखाई देती है, स्वर्ण की चमक नहीं। कभी-कभी दहकता अंगारा भी राख से ढक जाता है। उसकी उष्णता कम नहीं होती, अंगारे से ऊपर राख की परत जमा हो जाती है। हमें ऊपर से ज्योति दिखाई नहीं देती। केवल राख-ही-राख दिखाई देती है। वास्तविकता यह है कि धूल के भीतर स्वर्ण-शिखर भी है और राख के नीचे ज्वलित अग्नि भी है।

भारतीय संस्कृति पर कुछ कारणों से, कुछ निमित्तों से राख और धूलि जमा हो रही है। हमें उदात्त जीवन-मूल्यों को उन्नत संस्कृति के महत्त्व को समझने के लिए तथा आदमी और आदमीयत (मानवता) को समझने के लिए, संपूर्ण प्राणीजगत को समझने के लिए, चराचर विश्व को समझने के लिए जो दृष्टिकोण मिला है, वह इतना विशाल, इतना उदार, इतना उदात्त और इतना वैज्ञानिक दृष्टिकोण है, वैसा किसी और को मिला या नहीं, यह खोज का विषय है।

हमारे पास प्रचुर संपत्ति है, सोचने वाली बात यह है कि हम उसका उपयोग कैसे करें? यह वर्तमान पीढ़ी पर निर्भर है। पुरानी पीढ़ी चली गई या जाने की तैयारी में है। वह हमारा इस कार्य में कुछ सहयोग नहीं कर सकती। परोक्षतः उसका कुछ सहयोग हो सकता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से वह शायद हमारी मदद नहीं कर पाएगी। आने वाली पीढ़ी भी इस कार्य में हमारा प्रत्यक्षतः कोई सहयोग नहीं करेगी। सारी आशा एकमात्र वर्तमान पीढ़ी पर निर्भर है कि वह इस विषय में कुछ करे। जो भी संपत्ति या थाती उसके पास सुरक्षित बची है, उसका सदुपयोग करे। इस संदर्भ में एक छोटी-सी कहानी उल्लेखनीय है।

एक युवक भीख माँग रहा था। उसको एक ज्योतिषी ने देखा था। वह ज्योतिषी कोई जन्मकुंडली देखने वाला ज्योतिषी नहीं था, उड़ती चिड़िया के पर गिन लेने वाला ज्योतिषी था, फेस रीडिंग कर आदमी का पूरा कच्चा-चिट्ठा सामने रख देने वाला ज्योतिषी था। उस युवक को देखकर उसे लगा कि यह भिखारी तो नहीं हो सकता। यह ज्योतिषी उस युवक के पास गया। उससे बातचीत की।

उसकी रामकहानी से मालूम हुआ कि वह एक बड़े धनाढ्य आदमी का बेटा है। उसके पिता का बहुत बड़ा कारोबार था, किन्तु अचानक उनकी मृत्यु हो गई और पीछे उसके अल्पवयस्क पुत्र की मजबूरी का फायदा उठाते हुए उस सेठ के मुनीम और दूसरे कर्मचारी उसकी सारी संपत्ति पर हाथ साफ कर गए। भीख माँगने के अतिरिक्त उसके पास और कोई चारा नहीं रहा।

उस ज्योतिष ने उस भिखारी को ध्यान से देखा, फिर कहा–''तुम्हारे पास पिता की संपत्ति का कुछ भी नहीं बचा?

''बचा होता तो दर-दर क्यों भटकता? मेरे पास कुछ भी नहीं है।

''यह तुमने गले में क्या पहन रखा है?

''मेरे पिताजी ने यह ताबीज बनवाया था, ऐसा मेरी मां ने बताया था। यह बचपन से ही मेरे गले में है। लेकिन आप इसके बारे में क्यों पूछ रहे हैं? काले कपड़े में बंधी इस ताबीज का मेरी समझ में कोई मूल्य नहीं है, किन्तु मां-बाप की निशानी मानकर आज तक गले में लटकाए हुए हूँ।''

''क्या मैं इसे खोलकर देख सकता हूँ?''

www.terapanthinfo.com

''इसे खोलकर आप क्या देखेंगे? दे सकें तो मुझे कृपा कर रुपये-दो रुपये की भीख दें।''

''यह लो एक रुपया, लेकिन मुझे इस ताबीज को दिखाओ।'' भिखारी ने बड़े संकोच के साथ वह ताबीज गले से निकाल कर दे दी। उस व्यक्ति ने खोलकर देखा तो उसमें एक बहुमूल्य हीरा निकला।

उसने कहा–''करोड़ों की सम्पति गले में लटकाए तुम भीख माँग रहे हो? तुम्हारे पास इतना धन है कि तुम पचासों आदमियों का भरण-पोषण कर सकते हो। तुम्हारे पिता निश्चय ही बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने इस बात का विचार करके कि अचानक मुझे कुछ हो जाए तो मेरा पुत्र दर-दर का भिखारी न बने, पहले से ही व्यवस्था कर दी।''

संपत्ति का बोध होते ही फिर वह भिखारी नहीं रहा, वह दाता बन गया।

हमारे पास भी बहुत संपत्ति है। बाहर से हम आयात करें यह हमारी उदारता है, किन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हमारे पास प्रचुर धन है, हम निर्यात करने की स्थिति में हैं। आयात से ज्यादा निर्यात की हममें क्षमता है। विडंबना यही है कि हम इस पर ध्यान नहीं दे रहे हैं। इस पर हमें चिंतन करना है।

जीवन विज्ञान के बारे में लम्बी चर्चा करने की जरूरत नहीं है। हमारे सामने जीवन के दो पक्ष हैं।

1. आजीविका का पक्ष
2. भावात्मक विकास का पक्ष

आजीविका के बिना आदमी का काम नहीं चलता। आजकल इस पर सर्वाधिक ध्यान दिया जा रहा है। मैनें उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों से यही कहा कि ऐसे हिन्दुस्तान का निर्माण करो, जिसमें एक भी आदमी भूखा नहीं रहे। जिस दिन ऐसा होगा, सचमुच हिन्दुस्तान अपना प्राचीन गौरव प्राप्त कर लेगा। उसको अपनी विरासत पर सात्विक गर्व होगा।

आजीविका का प्रश्न कभी गौण नहीं किया जा सकता। प्राचीन प्राकृत साहित्य में शिक्षा के संदर्भ में बहुत सुन्दर लिखा गया है कि वास्तविक शिक्षा वही है, जिसके द्वारा वह अपने जीवन का निर्वाह कर सके।

अपने संवेगों पर नियंत्रण कर सके, यह शिक्षा आदमी के लिए बहुत जरूरी है। जीवन विज्ञान के शिक्षण और प्रशिक्षण का यही मुख्य उद्देश्य है। अहिंसा यात्रा के दौरान एक आई.ए.एस. अधिकारी मेरे पास आया। उसने कहा–''आचार्यश्री! पहले तो हमारे आई.क्यू. का मूल्य था। अब हम बड़ी बड़ी कंपनियों को मैनेज करते हैं, केवल आई.क्यू पर निर्भर नहीं रह सकते। अब हमारे सामने ई.क्यू. का मूल्य ज्यादा है। आजकल सब कुछ भावात्मक पक्ष पर निर्भर करने लगा है। मैनें एक पुस्तक भी देखी-इमोशनल इंटेलिजेन्सी। उसमें लिखा गया था कि ऐसे व्यक्ति जो कम पढ़े-लिखे हैं, उनकी गाइडेन्स में बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे लोग, हायर एजुकेटेड लोग काम करते हैं। इसका कारण यह है कि जो कम पढ़े-लिखे हैं, उनका संवेगात्मक पक्ष बहुत उजला है। उनका अपने संवेगों पर नियंत्रण ज्यादा है। वे जल्दी से अपना आपा नहीं खोते। जो बहुत पढ़े-लिखे हैं, उनके साथ यही सबसे बड़ी समस्या है कि उनमें सहनशक्ति और धैर्य नहीं है। इसके बिना आजकल मल्टीग्रेड कंपनियों का प्रबंधन नहीं किया जा सकता।

हमारे सामने दोनों पक्ष होने चाहिए। आजीविका का शिक्षण और भावात्मक विकास का शिक्षण और प्रशिक्षण–ये दोनों मिलने चाहिए। यह कैसे हो? यह प्रश्न है। यह बात बहुत आसान नहीं है। इनकी जटिलता को मैं स्वीकार करता हूँ। बौद्धिक शिक्षा देना सरल काम है, किन्तु भावात्मक विकास का शिक्षण और प्रशिक्षण बहुत जटिल काम है। इस विषय में शिक्षा देने वाले और लेने वाले दोनों की ज्यादा रुचि नहीं है। अपना बौद्धिक विकास कर हर आदमी जल्दी से जल्दी आजीविका के बारे में सोचने लग जाता है। भावात्मक विकास जैसी बातों को वह महत्त्व नहीं देता। क्योंकि यह माना जाने लगा है कि आज के युग में इसके द्वारा दो समय की रोटी का प्रबन्ध नहीं हो सकता।

जब तक अभिभावक और शिक्षक दोनों में इस शिक्षा के प्रति आकर्षण पैदा नहीं होगा, बात आगे नहीं बढ़ पाएगी। हम विद्यार्थी को केवल भावात्मक विकास का शिक्षण दें, यह एक कठिन काम है। परिवार का सारा वातावरण, समाज का वातावरण उसके अनुकूल नहीं है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थी को हम उस काम के लिए तैयार करें, यह एक बड़ी समस्या है। समस्याओं के बावजूद भी मेरा मानना है कि यह कार्य अवश्य करणीय है। हम अपनी शक्ति के द्वारा, अपनी बौद्धिक क्षमता या अन्तर्दृष्टि के द्वारा समस्याओं का पार पा सकते हैं। कोई असंभव बात नहीं है। किन्तु दृढ़ इच्छाशक्ति और मनोबल के बिना आज के वातावरण में यह सरल काम नहीं है।

आज कालाबाजारी, घूसखोरी और लूट-खसोट की प्रवृत्ति चल रही है। उसका एक बड़ा कारण यही है कि उसके अनुरूप मस्तिष्कीय प्रशिक्षण नहीं है। यह एक सच्चाई है कि अनपढ़ लोगों का भ्रष्टाचार के प्रचार-प्रसार में उतना योगदान नहीं है, जितना पढ़े-लिखे लोगों का है। मैं यह नहीं कहता कि कम पढ़ा लिखा आदमी भ्रष्ट नहीं हो सकता, किन्तु इतना जरूर कहूँगा कि उतने बड़े पैमाने पर वह भ्रष्टाचार नहीं करता, जितने बड़े स्तर पर पढ़े-लिखे और ऊपर की कुर्सी पर बैठे लोग करते हैं। भ्रष्टाचार जैसे खोटे काम में भी बड़ी दक्षता और चतुराई की जरूरत होती है। इसके लिए वित्तीय

www.terapanthinfo.com

नियमों और कानूनों की पूरी जानकारी होनी चाहिए, जो सामान्य या कम पढ़े लिखे लोगों में कम होती है।

यह बड़ी विडंबना है कि उच्च पदों पर बैठे लोगों का भावात्मक एकता और मानवीय एकता जैसी बातों पर ज्यादा विश्वास नहीं है। मानवीय मूल्यों के प्रति उनकी कोई आस्था नहीं है, करुणा की चेतना का उनमें अभाव है और संवेदनशीलता का मंत्र उन्हें नहीं मिला है। जब तक ये नहीं होते, भ्रष्टाचार को रोका नहीं जा सकता। कितने ही कानून बना लें, उसकी कोई न कोई तोड़, कोई न कोई गली ये तथाकथित भ्रष्ट बौद्धिक लोग निकाल ही लेंगे। मानवता, करुणाशीलता, संवेदनशीलता, प्रामाणिकता और नैतिकता के अभाव में भ्रष्टाचार पर कभी भी अंकुश नहीं लग सकता।

अभी एक व्यक्ति ने कहा—अणुव्रत की आचार-संहिता लेकर आचार्य तुलसी दिल्ली आए थे। यह बात पूरी तरह सही है। यहाँ पहली मुलाकात देश के शीर्षस्थ नेता डॉ. राजेन्द्रबाबू से हुई। उन्होंने अणुव्रत की आचार-संहिता को देखकर कहा—''आचार्यश्री! यह आज हमारे लिए बहुत जरूरी है। आजादी के बाद देश विकास की ओर अपने कदम बढ़ा रहा है, ऐसी स्थिति में नैतिकता के ये छोटे-छोटे सूत्र राष्ट्र के नागरिकों और नेताओं के लिए मार्गदर्शन का काम करेंगे। आप प्रधानमंत्री पंडित नेहरू से जरूर मिलें।''

आचार्यश्री ने कहा—''राजेन्द्रबाबू! पंडितजी से हमारा कोई परिचय नहीं है। हम पहली बार दिल्ली आए हैं। हमारा विहार क्षेत्र अधिकांशतः राजस्थान, गुजरात, मध्य भारत और महाराष्ट्र रहा है।

राजेन्द्रबाबू ने पंडित नेहरू को एक पत्र लिखा—''आचार्य तुलसी दिल्ली आए हैं। उनके पास देश के चारित्रिक निर्माण की एक बड़ी अच्छी योजना है। अणुव्रत के रूप में वह योजना आज राष्ट्र के लिए बहुत जरूरी है।''

आखिर आचार्यश्री से पंडित नेहरू की मुलाकात हुई। उस समय पंडित नेहरू ने पहली बात यही कही—''आचार्यश्री! कहिए, आप क्या चाहते हैं?''

आचार्यश्री ने कहा—''हमें कुछ नहीं चाहिए। मैं यहाँ कोई चीज माँगने के उद्देश्य से नहीं आया हूँ। मैं तो आपको देने आया हूँ।''

आचार्यश्री ने जैसे ही यह बात कही, सारा माहौल ही बदल गया। राजनेताओं के पास जो लोग भी मिलने जाते हैं, प्रायः उनकी कोई-न-कोई माँग होती है, कोई-न-कोई प्रार्थना होती है, कोई-न-कोई चाह या अभीप्सा होती है। मैं यह मानता हूँ और आचार्य तुलसी भी कहा करते थे कि माँगना सबसे बड़ी कमजोरी है। हम क्यों माँगे?

पंडित नेहरू को भी लगा होगा कि ऐसा पहली बार हो रहा है कि कोई मिलने आया और उसकी कोई माँग नहीं है, बल्कि वह कुछ देने के उद्देश्य से आया है। हम उनके पास निस्पृह भाव से अपनी बात कहने गए थे। मन में यही था कि देश के लिए आवश्यक समझें तो वे अणुव्रत की योजना को स्वीकार करें और समर्थन दें। कोई पैसा या पद मिलने की बात होती तो माँगने की बात आती है। हम तो इन सब चीजों से दूर हैं, फिर हमारी क्या माँग हो सकती है।

सारी बातें ज्ञात होने पर पंडितजी ने अणुव्रत की बात को पूरे ध्यान से और पूरी गंभीरता से सुना और समझा। उन्होनें कहा—''यह बहुत अच्छी बात है। मैं इस कार्य में अपना पूरा सहयोग दूंगा।'' सचमुच पंडितजी ने अणुव्रत के कार्य में अपना सहयोग दिया। राजेन्द्रबाबू इस कार्य से जुड़े ही थे। पंडितजी ने पं. उमाशंकर दीक्षित और तत्कालीन गृहमंत्री गुलजारीलाल नन्दा को भी अणुव्रत के साथ जोड़ दिया। बोले—''आचार्यजी! मुझे शायद इसके लिए पर्याप्त समय न मिल पाए। आप इन दोनों से बराबर मिलते रहें और जो भी सहयोग चाहें, निःसंकोच इन्हें बताएं।

उसके बाद दीक्षितजी और नन्दाजी का हमारे कार्यक्रमों से इतना जुड़ाव और लगाव हो गया कि इस कार्य के सिलसिले में वे हमारे पास कई बार आते, हमारी बात सुनते, अपने सुझाव देते। इस प्रकार अणुव्रत का कार्य विस्तार पकड़ता गया।

मैं आज भी सोचता हूँ कि यह भावात्मक विकास की प्रक्रिया बहुत जटिल है, किन्तु अनैतिकता और अप्रामाणिकता पर अंकुश लगाने के लिए इससे बढ़िया और कोई दूसरा विकल्प भी नहीं हो सकता। मानव संसाधन विकास मंत्रालय के पास भी कोई जादू की छड़ी नहीं है, जिसका स्पर्श करते ही सारा वातावरण बदल जाए। जटिलता के बावजूद इस विषय पर हमारा गहन चिंतन होना चाहिए। मैं इसे हिन्दुस्तान के साधु-संतों की और नेताओं की कमजोरी भी मानता हूँ कि हम लोग किसी विषय पर गहरा चिंतन नहीं करते। एक समस्या को लेते हैं, उस पर थोड़ा-बहुत चिंतन करते हैं, फिर उसे अधूरी या पूरी छोड़कर दूसरी को पकड़ लेते हैं। इसका कारण यही हो सकता है कि हमारी जो योग की शक्ति और एकाग्रता की शक्ति थी, वह अब सशक्त नहीं है। अगर गहराई से चिंतन होता तो आज आजादी के पचास वर्षों बाद भी गरीबी की समस्या नहीं रहती। कठिनाई यही है कि समस्याओं के बावजूद भी उन पर गहरा चिंतन नहीं होता।

मेरा विश्वास है कि अगर हमारे देश के जिम्मेदार राजनेता, अधिकारी, जिनके हाथ में शासन की बागडोर है, एक-एक विषय पर गंभीर चिंतन करते चले जाएं और उन पर निर्णय लेकर उसे कार्यान्वित करें तो स्थिति में सुधार हो सकता है। हमने आज तक जहां

www.terapanthinfo.com

और जितनी सफलता प्राप्त की, वह चिंतन का ही परिणाम थी।

आज मुझे समाचार-पत्र पढ़कर प्रसन्नता हुई। **अखबार में देखा—अजीम प्रेमजी, जो हिन्दुस्तान के बड़े उद्योगपति हैं, उन्होनें अपने लड़के की शादी इतनी सादगी से की कि मीडिया को भी पता नहीं चला। न कोई भोज, न कोई रिसेप्शन, न कोई पार्टी, न कोई हंगामा। घर में ही परिवार के सदस्यों के सामने फेरे लिए और शादी संपन्न हो गई। यह सबके लिए एक अनुकरणीय बात है। आज भ्रष्टाचार बढ़ रहा है, उसका एक बड़ा कारण आडम्बर और प्रदर्शन है। इस संदर्भ में सभी बड़े लोगों को अजीम प्रेमजी का अनुकरण करना चाहिए। यह संवाद पढ़कर मैनें उन्हें साधुवाद का संदेश प्रेषित किया।**

दूसरी प्रसन्नता की बात बंगाल के मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य से संबंधित है। विचारधारा से वे साम्यवादी हैं, मार्क्सिस्ट हैं, किन्तु उन्होनें जो एक महत्त्वपूर्ण बात कही वह यह है कि हम केवल किताबी ज्ञान के आधार पर समाज और देश को नहीं चला सकते। हमें युग की बदलती हुई स्थितियों और परिस्थितियों के अनुसार युगीनसत्य का अनुसरण करना चाहिए। साम्यवाद के मंच से शायद इस तरह की बात पहली बार सुनने में आई। इसकी हमें प्रसन्नता है कि युगीनसत्य या सच्चाई को जानने और समझने की बात अब वे भी कर रहे हैं, जो लीक से तृण भर भी हटने को कभी तैयार नहीं थे। उनके वाक्य को मैं ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर रहा हूँ—''तथ्यों के आधार पर हमें सत्यों को पकड़ना चाहिए न कि किताबी ज्ञान के आधार पर, न कि पुरानी परंपराओं के आधार पर।'' अगर यहाँ के साम्यवादी इस बात को समझें तो काफी कठिनाइयां हल हो सकती हैं।

शिक्षा का उद्देश्य मस्तिष्कीय प्रशिक्षण, मस्तिष्कीय परिवर्तन। हम मस्तिष्क को इतना तैयार कर दें कि वह शाश्वत सत्य को भी पकड़ सकें, सामयिक सत्य को भी पकड़ सकें और युग की सच्चाइयों को भी पकड़ सकें। जीवन विज्ञान कोई बहुत बड़ा और भारी भरकम अध्ययन का विषय नहीं है, मात्र चेतना के निर्माण का विषय है। इस विषय में थोड़ा और गहरा चिंतन कर मस्तिष्कीय प्रशिक्षण की ऐसी प्रविधि का प्रयोग करें, जिससे हमारा भावात्मक विकास हो और हमारी अन्तश्चेतना जागृत हो सके। अगर ऐसा होता है तो शायद मानव-समाज के लिए, राष्ट्र के लिए यह बहुत कल्याणकारी बात होगी। आज हिन्दुस्तान अहिंसा, अध्यात्म, अनेकान्त—इन क्षेत्रों में काम करके, इन सच्चाइयों का और इन विधाओं का बहुत अच्छा निर्यात कर सकता है, जिसकी आज दुनिया को अपेक्षा है।

हमारा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी बहुत अच्छा संबंध है, संपर्क है। आज दुनिया के कई देशों में अहिंसा प्रशिक्षण की माँग है। हम इस दिशा में प्रयत्न भी कर रहे हैं। मैं आशा करता हूँ कि चिंतनशील और प्रबुद्ध लोग मिलकर इस दिशा में और प्रयत्न करें, हमारे कार्य में सहभागी और सहयोगी बनें, क्योंकि सबके समन्वित प्रयत्न से ही इस दिशा में कुछ ठोस काम किया जा सकता है।

26 अगस्त 2005 को प्रदत्त उद्बोधन

अच्छी शिक्षा

शेख सादी

एक बहुत बड़ा विद्वान बादशाह के बेटे को पढ़ाता था। वह उसे बेहद डांटता और मारता रहता था। एक दिन मजबूर होकर लड़के ने पिता के पास जाकर शिकायत की और अपना जख्मी जिस्म भी दिखाया। बादशाह का दिल भर आया। उसने उस्ताद को बुलवाया और कहा, 'तू मेरे बच्चे को जितना झिड़कता और मारता है, इतना आम लोगों के बच्चों को नहीं, इसकी वजह क्या है?'

उस्ताद बोला, 'वजह यह है कि यों तो सोच-समझकर बोलना और अच्छे काम करना सब लोगों के लिए जरूरी है, लेकिन बादशाहों के लिए खासतौर से जरूरी है। जो बात उनकी जुबान से निकलेगी या जो काम उनके हाथ से होगा, वह सारी दुनिया में मशहूर हो जाएगा, जबकि आम लोगों की बात और काम का इतना असर नहीं होता।'

यदि किसी फकीर में सौ ऐब हैं, तो उसके साथी उसका एक ऐब भी न लेंगे, लेकिन बादशाह से एक नाजायत हरकत हो जाए, तो उसकी शोहरत मुल्क के एक सिरे से दूसरे सिरे तक हो जाएगी। इसलिए अन्य बच्चों के मुकाबले में बादशाह के बेटे के चरित्र को संवारने की उस्ताद को ज्यादा कोशिश करनी चाहिए।' जिस बच्चे को तू बचपन से अदब नहीं सिखाएगा, वह जब बड़ा होगा, तो उसमें कोई गुण नहीं होगा। जब तक लकड़ी गीली रहती है, उसे कैसे ही मोड़ लो। जब वह सूख जाती है, तो आग में रखकर ही उसे सीधा किया जा सकता है। जो लड़का सिखाने वाले का जुल्म बर्दाश्त नहीं कर सकता, उसे जमाने का जुल्म बर्दाश्त करना पड़ता है। बादशाह को उस काबिल उस्ताद की बात पसंद आई। उसने खुश होकर इनाम दिया।

www.terapanthinfo.com

विद्यार्थी का खाने में जितना संयम होगा, अध्ययन में उतना ही ज्यादा मन लगेगा। वह इतना अधिक भी न खाए कि खाने के बाद बार-बार पेट पर ध्यान जाए और इतना कम भी न खाए कि बार-बार उसे भूख सताए। सन्तुलित भोजन विद्यार्थी के विकास में सहयोगी बन सकता है।

अच्छा विद्यार्थी

आचार्य महाश्रमण

जीवन निर्माण के अनेक घटक हैं। उन में एक महत्त्वपूर्ण घटक है—शिक्षा। शिक्षा के दो प्रकार हैं—ग्रहण-शिक्षा और आसेवन-शिक्षा। ज्ञान प्राप्त करने को ग्रहण-शिक्षा और उसके अनुसार आचरण करने को आसेवन-शिक्षा कहा जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र में शिक्षाशील के बारे में बहुत सुन्दर बताया गया है—

अह अट्ठहिं ठाणेहिं, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।
अहस्सिरे सया दंते, न य मम्ममुदाहरे।।
नासीले न विसीले, न सिया अइलोलुए।
अकोहणे सच्चरए, सिक्खासीले त्ति वुच्चई।।

शिक्षा में रुचि रखने वाला या अभ्यास करने वाला शिक्षाशील कहलाता है। शिक्षाशील की पहचान आठ बातों से हो सकती है। उसमें पहली विशेषता यह होती है कि शिक्षाशील व्यक्ति ज्यादा हास्य नहीं करता। ज्यादा हँसने वाला, अनावश्यक हँसने वाला, अनुपयुक्त रूप में हँसने वाला अपनी गम्भीरता को खो देता है, इसलिए हँसने में भी विवेक होना चाहिए। कौन-सी बात पर हँसना चाहिए और कौन-सी बात पर गम्भीर रहना चाहिए? कोई वक्ता बोलते समय गलत बोल जाता है और श्रोता उस पर हँसने लग जाता है तो श्रोता की गम्भीरता नहीं रहती। कभी कोई विद्वान व्यक्ति भी स्खलित हो सकता है, उस समय उसकी मजाक उड़ा दी जाए तो फिर शिष्टता कहाँ रही? कोई व्यक्ति चलते-चलते गिर गया और उसे उठाने की बजाय उस पर हँसने लगें तो शालीनता कहाँ रही? हाँ, आदमी को प्रसन्न रहना चाहिए, निराश नहीं रहना चाहिए। किन्तु साथ में शिष्टता, शालीनता और गम्भीरता भी रहनी चाहिए। राजस्थानी भाषा में एक दोहा बोला जाता है—

ध्यानी तो हिरदे हँसै, मुनि हँसै मुलकज।
पंडित तो नयणा हँसै, हड-हड हँसै निर्लज।।

ध्यानी व्यक्ति का हास्य हृदय में होता है। उसके भीतर आनन्द का प्रवाह चलता रहता है। वह बाहर ज्यादा नहीं हँसता। मुनि का हास्य मुस्कान होता है। उसके वदन पर सहज प्रसन्नता, सहज मुस्कान रहती है। पण्डित का हास्य आँखों में झलकता है। वह अध्ययन-अध्यापन में लगा रहता है। उसकी आँखों से आनन्द टपकता है। जो व्यक्ति न ध्यानी है, न मुनि है, न पण्डित है और न शालीन है, वह बिना मतलब जोर-जोर से हँसता है। शिक्षाशील व्यक्ति गम्भीर प्रवृत्ति वाला होता है, वह ज्यादा हँसी मजाक नही करता।

शिक्षाशील की दूसरी विशेषता यह है कि वह इन्द्रिय और मन का दमन करने वाला होता है। विद्यार्थी में यदि इन्द्रिय संयम न हो तो शिक्षा प्राप्ति में बाधा उत्पन्न हो सकती है। वर्तमान की शिक्षा प्रणाली को देखकर ऐसा लगता है कि स्कूल का जीवन तो फिर भी सुरक्षित रह सकता है, किन्तु कॉलेज के जीवन में विशेष सावधानी रखने की अपेक्षा रहती है। वहाँ फिसलन हो सकती है, अनेक बुरी बातें जीवन में आ सकती हैं, मन को प्रभावित कर सकती हैं। वहाँ अखाद्य अथवा अपेय का प्रयोग किया जा सकता है। इन्द्रिय संयम के अभाव में नशे की प्रवृत्ति और वासना की वृत्ति विद्यार्थी को उन्मत बना सकती है। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षाशील व्यक्ति इन्द्रिय सुख में उलझे नहीं। कहा भी गया है—

सुखार्थी त्यजेत् विद्यां, विद्यार्थी त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या, कुतो विद्यार्थिनः सुखम्।।

शिक्षाशील की तीसरी विशेषता यह है कि वह मर्म का प्रकाशन नहीं करता। मर्म का अर्थ है—लज्जाजनक,

www.terapanthinfo.com

अपवादजनक या निन्दनीय आचरण सम्बन्धी गुप्त बात। किसी की कोई कमजोरी जानकारी में आ गई, निन्दनीय बात ध्यान में आ गई, उसको जगह-जगह प्रकाशित करता रहे—यह शिक्षाशील का लक्षण नहीं होता। आदमी से दुष्कृत्य हो सकता है, अपवादजनित घटना घटित हो सकती है, किन्तु शिक्षाशील किसी की गुप्त बात को फैलाए नहीं। अपने तक सीमित रखे या यथास्थान प्रस्तुत करे। उसमें यह विवेक जागृत होना चाहिए कि कौन-सी बात को प्रकाश में लाना चाहिए और कौन-सी बात को गुप्त रखना चाहिए।

शिक्षाशील की चौथी विशेषता यह है कि वह चरित्र-धर्म से हीन नहीं होता। प्रश्न हो सकता है, चरित्र क्या है? 'चयरित्तीकरणं चरित्तं' कुसंस्कारों और बुरी आदतों के संचित कोष खाली करने वाला आचरण चरित्र कहलाता है। आदमी अपनी कमी को देखकर उसे दूर करने का संकल्प करे तो उसका चरित्र उन्नत हो सकता है। जो व्यक्ति स्वयं को देखना सीख लेता है वह अपने आचार को प्रशस्त बना सकता है। जो व्यक्ति आचार से बिल्कुल हीन होता है वह अशील बन जाता है। विद्यार्थी को आचार-सम्पन्न बनने का प्रयास करना चाहिए। जो व्यवस्था, विधि और नियम हो, उनका पालन करना चाहिए।

शिक्षाशील की पाँचवीं विशेषता यह है कि उसका चरित्र दोषों से कलुषित नहीं होता। जो आचार में दोष लगाता रहता है वह विशील बन जाता है। विद्यार्थी अशील तो बने ही नहीं, जो आचार स्वीकार किया है उसमें विकृति भी पैदा न करे। कपिल के साथ और क्या हुआ था? वह माँ की प्रेरणा से पिता के मित्र उपाध्याय के पास पढ़ने गया। वहाँ उसकी आवास और भोजन की समुचित व्यवस्था कर दी गई। सामान्य परिचर्या के लिए एक दासी को रखा गया। धीरे-धीरे दोनों में सम्पर्क बढ़ा और कुछ समय बाद ही कपिल ने विद्यार्थी के आचार धर्म का उल्लंघन कर दिया। आखिर उसको यह कह भेज दिया गया कि यह विद्यार्थी शिक्षा के योग्य नहीं है। कपिल के जीवन में विशीलता आ गई। इसलिए वह शिक्षा के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सका।

शिक्षाशील की छटी विशेषता यह है कि वह रसों में अतिलोलुप नहीं होता। सादा भोजन, स्वास्थ्यप्रद भोजन और शिक्षा-साधना में सहयोगी भोजन विद्यार्थी के लिए अनुकूल रहता है। विद्यार्थी के जीवन में किसी चीज का नशा नहीं होना चाहिए। खाने में असंयम नहीं होना चाहिए। जहाँ साधना गौण हो जाती है और मात्र मनःतृप्ति का लक्ष्य रहता है, वहाँ लोलुपता की स्थिति बन सकती है। विद्यार्थी का खाने में जितना संयम होगा, अध्ययन में उतना ही ज्यादा मन लगेगा। वह इतना अधिक भी न खाए कि खाने के बाद बार-बार पेट पर ध्यान जाए और इतना कम भी न खाए कि बार-बार उसे भूख सताए। सन्तुलित भोजन विद्यार्थी के विकास में सहयोगी बन सकता है।

शिक्षाशील की सातवीं विशेषता यह है कि वह क्रोध नहीं करता। दो अग्रेंज विद्यार्थियों में रास्ते में लड़ाई हो गई। परस्पर गाली-गलौज कर दोनों अपने-अपने घर पहुँच गए। सूर्यास्त के समय एक विद्यार्थी दूसरे के घर गया और हँसकर बोला—'सूरज छिपने वाला है, अब हमको गुस्सा नहीं रखना चाहिए। कल मैं चर्च गया था, वहाँ पादरी ने कहा—क्रोध में सूर्य को छिपने नहीं देना चाहिए।' दूसरा विद्यार्थी भी इस बात से बहुत खुश हुआ और अपना दिमाग ठण्डा कर लिया। बार-बार गुस्सा आना, बात-बात में उत्तेजित हो जाना, दिमाग का भारी हो जाना, आवेश की स्थिति बन जाना—ये सब विद्यार्थी के जीवन-विकास में बाधक बन सकते हैं। क्रोध-आवेश और तनाव हर दृष्टि से हानिकारक होते हैं, अशान्तिवर्धक होते हैं। विद्यार्थी को इन्हें शान्त रखने का प्रयास करना चाहिए।

शिक्षाशील की आठवीं विशेषता यह है कि वह सत्य में रत रहता है। जो सत्य की खोज में लगा रहता है, सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करता रहता है, जिज्ञासा और तर्क के माध्यम से यथार्थ को समझने का प्रयास करता है, वह 'सच्चरए' कहलाता है। एक विद्यार्थी को जितना सत्यग्राही होना चाहिए, उतना सत्याग्रही भी होना चाहिए। सत्य के पथ पर चलने वाला शिक्षाशील व्यक्ति ईमानदारी के प्रति आस्थावान होता है। महात्मा सुकरात ने लिखा है—जो सत्य के लिए उत्सर्ग करने को तैयार रहता है वह ईमानदार होता है। ऋजुता और ईमानदारी—ये दो मूल चीजें हैं। प्रमाद कहीं भी, कभी भी और किसी से भी हो सकता है, किन्तु ऋजुता है, ईमानदारी है तो प्रमाद का परिष्कार किया जा सकता है। बात उस समय की है जब गांधीजी विद्यार्थी रूप में थे। इंस्पेक्टर महोदय ने विद्यार्थियों को अग्रेंजी के पाँच शब्द लिखने के लिए कहा। प्रायः सभी बच्चों ने ठीक लिखे, किन्तु गांधीजी ने एक शब्द गलत लिख दिया। अध्यापक ने संकेत किया कि पास वाले विद्यार्थी की कॉपी से देखकर ठीक कर लो, परन्तु गाँधीजी ने वैसा नहीं किया। इन्स्पेक्टर साहब ने अन्य छात्रों को शाबाशी दी और गाँधीजी से कहा—तुम मूर्ख लड़के हो। बाद में अध्यापक ने पूछा—मेरे कहने पर भी तुमने नकल क्यों नहीं की? गाँधीजी ने कहा—अध्यापक महोदय! मैं मूर्ख कहलाना मंजूर कर सकता हूँ, परन्तु अप्रामाणिकता को स्वीकार नहीं कर सकता। यह है ईमानदारी के प्रति आस्था।

उपरोक्त आठ बातें जिस विद्यार्थी में होती हैं, वह शिक्षाशील हो सकता है। शिक्षाशील एक बच्चा भी हो सकता है और एक अवस्थाप्राप्त व्यक्ति भी हो सकता है। जब तक वह व्यक्ति नया-नया ज्ञान ग्रहण करता रहता है तब तक वह विद्यार्थी या शिक्षाशील बना रह सकता है।

www.terapanthinfo.com

विचार से दूर जाती शिक्षा

प्रो. यशपाल

पर्यावरण मंत्री जयराम रमेश ने आईआईटी और आईआईएम के शिक्षकों को आड़े हाथ लिया, लेकिन उनके छात्रों की तारीफ की। यह कोई नई बात नहीं है, आईआईटी के बारे में कहा जाता है कि बड़े अच्छे संस्थान हैं, वहाँ बड़े अच्छे बच्चे आते हैं। ये इंस्टीट्यूट छात्रों को विशेषज्ञ बना देते हैं। हमें सोचना चाहिए क्या विश्वविद्यालयों का यही काम है। मूल सवाल तो नए विचारों का है। क्या ये संस्थान नए विचार दे रहे हैं, अगर नहीं दे रहे हैं, तो इसके पीछे क्या कारण हैं?

यह समझ लेना होगा कि विश्वविद्यालय अगर विश्वविद्यालय नहीं रहेंगे, तो संस्थान बन जाएंगे। हालत यह हो गई है कि ये एक समस्या उठाते हैं और फिर उस समस्या में उलझ जाते हैं। विश्वविद्यालय का अर्थ यह होता है कि ज्ञान का ब्रह्मांड के साथ ताल्लुक हो। वहाँ से नए-नए विचार निकलें। आम तौर पर नए विचार नहीं निकलते हैं, क्योंकि कई समस्याएं आ जाती है। इसलिए हमने यह सलाह दी थी कि आईआईटी, आईआईएम को ऐसा होना चाहिए कि वे पूरे विश्वविद्यालय की तरह काम करें, केवल शोध संस्थान की तरह नहीं। इस बड़ी कमी पर बहुत काम करने की जरूरत है। उच्च शिक्षण संस्थानों, विश्वविद्यालयों पर केवल बयान देकर इस तरह से कालिख पोतने की भी जरूरत नहीं है। बहुत तेज और कुशाग्र बच्चे वहाँ पढ़ने जाते हैं। जहां उनको मौका मिलता है, वे दायरे से निकलकर बहुत अच्छा काम करते हैं।

शिक्षा व शोध के अभावों को भूलकर कई बार कहा जाता है कि आईआईएम, आईआईटी में काफी तनख्वाह दिलवाने वाली पढ़ाई होती है। दूसरे लोग भी यह देखते हैं कि किस संस्थान के छात्रों को कितने पैसे की नौकरी प्रस्तावित हुई। यह गलत सोच है, इससे निकलने की जरूरत है।

अच्छे छात्र आते हैं, क्योंकि कड़ी प्रतिस्पर्द्धा से निकलकर आते हैं। उन्हें खुली जगह मिलनी चाहिए, लेकिन उन्हें एक संकीर्ण दायरे में डालने की कोशिश होती है। सच्चे विश्वविद्यालय का वातावरण नहीं रह जाता है। नए विषय बनाने की जरूरत है, ऐसे विषय जिसके बारे में किसी ने पहले सोचा न हो। पारंपरिक विषयों से आगे बढ़ने की जरूरत है। पढ़ाई के पारंपरिक विषय कांबिनेशन या संयोजन से आगे बढ़ने की जरूरत है। यह काम अगर विश्वविद्यालय नहीं कर पा रहे हैं, तो इसका मतलब है, वे सच्चे मायने में विश्वविद्यालय नहीं है।

'विश्वस्तरीय' शब्द भी मुझे अच्छा नहीं लगता। कुछ-कुछ दिनों के बाद कोई न कोई सर्वेक्षण आ जाता है, जिसमें बताया जाता है कि हमारा एक भी विश्वविद्यालय सर्वश्रेष्ठ की सूची में नहीं है। ऐसी खबरों का प्रचार भी खूब होता है, लेकिन यह तरीका गलत है। अपने हिसाब से अपने गुण और अपने वातावरण के हिसाब से हमें अपने विश्वविद्यालयों को आंकना चाहिए, न कि कोई कथित विश्वस्तरीय पैमाना बनाकर। अगर आप केवल यही आंकेंगे कि कितनी बड़ी तनख्वाह मिलती है छात्रों को, तो यह गलत होगा। अच्छी तनख्वाह मिलती है, तो इसका मतलब है कि वह अच्छा नौकर है, न कि वह अच्छा विद्वान है या नए-नए विचार पैदा करने वाला है।

आज बिल्कुल नए विचारों की जरूरत है, पता नहीं क्यों, वे सोच नहीं पा रहे हैं और इसलिए नए विचार नहीं आ पा रहे हैं। लगभग सभी उच्च शिक्षण

तकनीकी इंस्टीट्यूट छात्रों को विशेषज्ञ बना देते हैं। हमें सोचना चाहिए क्या विश्वविद्यालयों का यही काम है। मूल सवाल तो नए विचारों का है। क्या ये संस्थान नए विचार दे रहे हैं, अगर नहीं दे रहे हैं, तो इसके पीछे क्या कारण हैं?

संस्थान या विश्वविद्यालय एक ही परंपरा पर चल रहे हैं। शिक्षा का एक ही तरीका अपना रहे हैं। मैं यहां केवल भारतीय विश्वविद्यालयों की बात नहीं कर रहा हूँ, दुनिया भर के विश्वविद्यालयों की बात कर रहा हूँ। सब शिक्षा या किसी विषय के छोटे-छोटे टुकड़ों के साथ लगे रहते हैं और विस्तार से शिक्षा की मूल समस्या को देख नहीं पाते हैं।

मैं चाहता हूँ कि आईआईटी और आईआईएम को इतनी आजादी हो कि वे कुछ भी पढ़ाएं, हर शिक्षक को यह आजादी हो कि वे कुछ भी पढ़ाए। छात्र को इतनी आजादी हो कि वह कुछ भी पढ़े। अभी यह कहा जाता है कि शिक्षा में या विश्वविद्यालयों में आजादी का माहौल नहीं है। शिक्षा संस्थानों में सोचने और करने की आजादी जरूरी है। नए नए तरीके आजमाने की जरूरत है। कई अच्छे संस्थान हैं हमारे यहां, लेकिन उन्हें और खोल देना चाहिए। यहां खोलने का अर्थ यह है कि संस्थानों को छूट मिले, यह पैमाना टूटे कि आप ये-ये विषय पढ़ाएंगे, तभी आपको उपाधि मिलेगी। जो विषय किसी ने सोचा नहीं, उसकी भी पढ़ाई हो सके, छात्र अपनी पसंद के हिसाब से अलग-अलग कांबिनेशन ले सकें। इसके लिए हम केवल शिक्षा प्रबंधन को जिम्मेदार नहीं ठहरा सकते। उनकी अपनी समस्याएं हैं, वे छोटी-छोटी चीजों में उलझे रहते हैं। अपने लिए कई तरह के काम निकाल लेते हैं।

मैं चाहता हूँ कि आईआईटी और आईआईएम को इतनी आजादी हो कि वे कुछ भी पढ़ाएं हर शिक्षक को यह आजादी हो कि वे कुछ भी पढ़ाए। छात्र को इतनी आजादी हो कि वह कुछ भी पढ़े। अभी यह कहा जाता है कि शिक्षा में या विश्वविद्यालयों में आजादी का माहौल नहीं है। शिक्षा संस्थानों में सोचने और करने की आजादी जरूरी है। नए नए तरीके आजमाने की जरूरत है।

दुनिया में कुछ विश्वविद्यालय बहुत अच्छे भी हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि उन विश्वविद्यालयों की नकल करके अपने यहां विश्वविद्यालय बनाए जाएं। नकल करके विश्वविद्यालय नहीं बनाए जा सकते। बहुत सारे विश्वविद्यालय अब भारत में भी बहुत अच्छे हो गए हैं। अपनी जरूरत पर सोचा जाए, अपनी समस्याओं पर विचार करके आगे बढ़ने की जरूरत है। शैक्षणिक आजादी के साथ बढ़ने की जरूरत है।

शिक्षा में बयानबाजी खूब होती है। लेकिन ऐसी बयानबाजी करने वाले अच्छी चीजों को नहीं देखते हैं। विश्वस्तरीय विश्वविद्यालयों की सूचियां बन रही है, लेकिन उनसे हमें घबराने की कोई जरूरत नहीं है। हमें सोच सुधारनी चाहिए। हम सोचते हैं कि सुधार वो सरकार करेगी या ये सरकार करेगी, जबकि सुधार विश्वविद्यालयों के अंदर ही होने चाहिए। कोशिश यह होती है कि नियम एक तरह के होने चाहिए, एक ही तरह की परीक्षाएं होनी चाहिए, ऐसे में, जब सब कुछ एक तरह का होने लगता है, तो इसी से बर्बादी होती है। एक तरह की प्रतिस्पर्द्धा या संघर्ष हर जगह दिखने लगता है। इसलिए मैं बोल रहा हूँ, विश्वविद्यालयों को खोलने या मुक्त करने की जरूरत है। शिक्षा तो वह है, जो वास्तव में ज्ञान बढ़ाए। नए विचारों व नए कामों के लिए रास्ता खोले।

राजस्थान पत्रिका 25 मई 2011 से साभार

सिकन्दर तमाम देशों को जीतता हुआ तुर्किस्तान पहुंचा। वहां के मंत्री ने अपने बादशाह से कहा, 'सिकन्दर सेना लेकर चढ़ाई करने आया है। कुछ उपाय करें।' बादशाह ने लापरवाही से कहा, 'कोई चिंता की बात नहीं।' मंत्री ने समझा कि बादशाह ने बिना लड़े ही हथियार डाल देने का निश्चय किया है। सिकन्दर तुर्की को विजित मानकर राजमहल के सामने पहुंचा। बादशाह उसे बड़े सम्मान के साथ अपने महल में ले गया। समारोहपूर्वक सिकन्दर को सिंहासन पर अपने साथ बैठाया। सिकन्दर इस स्वागत से अभिभूत था। बिना खून-खराबा किए बादशाह ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। इससे बड़ी बात और क्या हो सकती थी? शाही दावत का इंतजाम हुआ। मखमली कपड़ों से ढका हुआ थाल सामने था। थाल पर रखे हुए वस्त्र को हटाते ही सिकन्दर चौंक उठा। यह क्या? सबकी थालियों में सुस्वादु व्यंजन है और सिकन्दर की थाल हीरे, मोतियों और अन्यान्य रत्नों से भरी हैं। उसने एक तीक्ष्णदृष्टि बादशाह पर डाली, जैसे कुछ पूछ रहा हो, यह क्या मजाक है?

बादशाह ने कहा, 'मैंने सुना है कि आप रत्नों और खजानों से भरी अशर्फियों के शौकीन हैं। इसलिए आप तमाम देशों को अपने अधीन कर वहां की सारी दौलत को हस्तगत कर रहे हैं। इसीलिए आपके भोजन के लिए विशेष व्यवस्था करनी पड़ी। सिकन्दर के चेहरे पर एक अजीब तरह की शांति छा गई। बादशाह को तो नसीहत देनी थी सिकन्दर को। सिकन्दर ने बादशाह को अपना मित्र माना और अपने सैनिकों को किसी भी चीज को अधिकार में लेने की मनाही कर दी।

- आचार्य महाप्रज्ञ

शिक्षा के सामूहिक स्वरूप में आचरण का प्रशिक्षण

सविता लखोटिया

यह जग जाहिर है कि अभी शिक्षा का विस्तार और विकास बहुत द्रुत गति से हो रहा है। यह भी सच है कि आज की शिक्षा बौद्धिक विकास में तो खूब आगे बढ़ रही है परन्तु नैतिकता और चरित्र-निर्माण की भूमिका में पिछड़ रही है। इसका मतलब यह हुआ कि व्यक्ति के चहुँमुखी विकास में संतुलन नहीं हो पा रहा है। यह भी सुनिश्चित लगता है कि इस असंतुलन ने, शिक्षा के असीमित प्रसार के बावजूद, तनाव, बेचैनी, असंतोष, मनोरोग और जीवन-शैली की व्याधियों में अकथ वृद्धि कर दी है। शिक्षित व्यक्ति ना तो चरित्र-सम्पन्न बन पा रहा है और ना ही स्वस्थ। वह तो केवल आधुनिकता की आपाधापी में उलझ कर रह गया सा दीखता है। वरन् कभी-कभी तो वह अपनी उच्च और विस्तृत शिक्षा को ही कोसने लगता है। यही नहीं, ऐसे असंतुलित व्यक्तित्व के दुष्परिणाम सर्वव्याप्त भ्रष्टाचार और विश्वव्यापी आतंकवाद की सीमा तक नजर आने लगे हैं। विपुल वैभव के बीच भी एक गहरी निराशा का वातावरण पनपने लगा है, फिर अभावग्रस्तों की तो मिशाल ही क्या?

परन्तु अब मूल प्रश्न यह है कि शिक्षा को अपने मूल उद्देश्य में सार्थक और सफल कैसे बनाया जाए? यह प्रश्न विश्व में हर कहीं मनीषी, चिन्तक, समाज और सरकार के प्रशासक भी करने लगे हैं, विचार मंथन और विमर्श स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतराष्ट्रीय स्तर पर भी हो रहा है। परिणाम स्वरूप यह आवश्यक दीखने लगा है कि देरी किए बिना शिक्षा में सुधार का काम स्थानीय और पहली पायदान से ही आरम्भ किया जाए। इसलिए बहुत सी नव-धारणा शिशु विद्यालयों पर भी केन्द्रित होने लगी है क्योंकि अब शैशव का एक अंश माँ के आँगन से हट कर क्रीड़ा विद्यालयों में पुष्पित होने लगा है। अब एक चेतना जगी है और क्रियात्मक प्रयत्नों द्वारा आने वाली पीढ़ी को वर्तमान के अवसाद भरे प्रभावों से बचा लेने का अभियान आरम्भ हुआ सा लगता है। यह बहुत उत्तम संकेत है पर अब भी कभी नीतिगत अनिश्चितता और कभी कार्यान्विति की शिथिलता द्वंद्व पैदा करती रहती है। इसलिए कुछ निश्चयात्मक सोच की आवश्यकता है।

आज की शिक्षा सामूहिक रूप से क्रीड़ा विद्यालयों से लेकर प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों एवं इतर प्रशिक्षणालयों में संयोजित की जाती है। सभी स्तरों पर नव-चिन्तन और नव-विधान की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है और हर प्रशासन अपनी सोच और अनुशंसा के साथ नीति निर्धारण भी कर रहा है। मैं अभी प्रारंभिक स्तर की बात करूंगी क्योंकि यहीं से शिक्षा की नींव स्थापित होती है। मेरी राय में इस स्तर से ही शिक्षा का प्रथम उद्देश्य बालक के चरित्र का निर्माण और व्यक्तित्व में मानवीय गुणों का सूत्रपात करना है जिसका क्रमिक विकास आगे के सोपानों पर निरन्तर होते रहना चाहिए। बाद के सोपानों में विषय ज्ञान का विस्तार करना जहाँ शिक्षा को सार्थक बनाने की भूमिका अदा करता है, वहीं विद्यार्थी के आचरण में स्वावलम्बन का विकास करना है, उसे उसकी मौलिक स्वाधीनता प्रदान करते हुए, न कि उसको अनुशासनहीन स्वैच्छिकता की 'पॉकेट मनी' देते हुए जहाँ चरित्र-स्खलन और भौतिकता की प्रवृत्ति निरंकुश बन सकती है। जिस किसी स्तर पर उसकी आध्यात्मिक गुण शक्ति का विकास रूका, उसी स्तर से शिक्षा भ्रान्त और अहितकारी होना आरम्भ कर देती है। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए।

कहना न होगा कि विवरण में हमारी शिक्षा-नीति भी यही कहती है। पाठ्यक्रम और पाठ्येत्तर गतिविधियाँ भी इसी धारणा के आधार पर तैयार की जाती है। मुश्किल है कि बंटाधार होता है उनकी क्रियान्विति के स्तर पर। विद्यालयों में व्यक्तित्व विकास और प्रतिभा पल्लवन के नाम पर कार्यक्रमों की एक विशाल तालिका तो बन जाती है परन्तु उन्हें निरूपित करना संभव नहीं होता—कभी व्यवस्था के नाम पर, कभी पाठ्यक्रम की विशदता के बहाने और कभी मनोबल हीन होकर। बस कुछ गतिविधियों को सलटाने के लिए एजेन्डा पर सही का निशान लग जाता है। इसके अलावा, आर्थिक और भौतिक लिप्सा वाले समाज का प्रभाव अध्यापक और विद्यार्थी दोनों

ही वर्गों पर पड़ रहा है जिसका परिणाम है कि साहित्य, कला, भाषा और संस्कृति के विषयों को द्वितीय पदेन् माना जाने लगा है और केवल अर्थोपार्जन में सहायक विषयों को ही प्राथमिकता दी जाने लगी है। यही नहीं, ऐसे विषयों में अतिरिक्त प्रवीणता हासिल करने के लिए प्रशिक्षण केन्द्रों की दुकानों की भरमार हर गली कूंचे में दिखाई देने लगी है। सबसे पहली जरूरत हमें इसी मानसिकता में बदलाव लाने की है और विद्यार्थी को स्वाध्यायी और स्वावलम्बी बनाने की प्रेरणा देने की है। आज की शिक्षा डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक किंवा किसी प्रकार का प्रोफेशनल तो बना रही है किन्तु व्यक्ति को अभिरुचि सम्पन्न इंसान नहीं बना पा रही। यह बदलाव नियमों से तो लाया ही जा सकता है, प्रोत्साहन के तरीकों से इसे सहज संभव बनाया जा सकता है। विद्यालय एवं शिक्षा की नीति के साथ-साथ सामाजिक प्रेरणा भी कारगर होनी चाहिए।

बालक आदेश उपदेश की अपेक्षा आचरण से जल्दी और ज्यादा सीखता है। अतः प्राथमिक शाला में ऐसे समर्पित अध्यापकों की जरूरत है जिनके आचरण से बालक प्रभावित भी हों और प्रेरित भी। अध्यापक का शाब्दिक अर्थ ही होता है आत्मा में रस भरने वाला और बिना श्रद्धा के विद्या कब सार्थक होती है? शिक्षा को एक वृत्ति और उपार्जन का साधन बनाना कोई भूल नहीं है परन्तु अवश्य घातक भूल है शिक्षक की भूमिका का आत्म-तत्त्व नष्ट करना, उसे एक प्रकार का व्यवसायी अथवा मूल्य चुकाया हुआ सेवक बनाना। पेशे के मूल्य के साथ शिक्षक की गरिमा वह भी खोए और समाज भी छीन ले तो होना वही है जो हो रहा है। श्रद्धा और विद्या एक दूसरे से कट नहीं सकते। श्रद्धा के लिए चाहिए उन्नत आचरण। इसलिए आवश्यक है कि अध्यापकों के चयन में सनद के साथ शिक्षक के जीवन आचरण और उद्देश्यों को ध्यान में रखा जाए। बालक में जीवन-मूल्यों की नींव रखना तब आसान हो सकेगा। हाँ, दूसरी तरफ यह भी जरूरी है कि ऐसे अच्छे अध्यापकों को सामाजिक सम्मान और आर्थिक ईनाम उसी अनुरूप प्रदान किया जाए। तभी हम उत्तम शिक्षकों की खेप तैयार कर पाएंगे। विश्व के कई देशों में पूर्व प्राथमिक के अध्यापकों को बहुत अच्छा वेतन भी दिया जाता है और सम्मान भी क्योंकि वे ही समाज की नींव तैयार करने वाले होते हैं। बिना आदर के आदर्श का टिकाव भी मुश्किल है।

अब कुछ बात विद्यार्थियों की गतिविधियों के माध्यम से शिक्षा के उद्देश्य पूर्ति की की जाए। विद्यालय में मनाई जाने वाली महापुरुषों की जयंतियाँ, राष्ट्रीय पर्व, खेल-समारोह, विभिन्न प्रतियोगिताओं और सांस्कृतिक उत्सवों का सदुपयोग विद्यार्थियों में चरित्र के गुणों को उद्दीप्त करने के लिए आयोजित किए जाने चाहिए। पुस्तकालय, वाचनालय और प्रयोगशालाओं का बखूबी और सोत्साह प्रयोग भी व्यक्तित्व में चार चांद लगा सकता है। अभी अधिकांश विद्यालयों में या तो ये सुविधाएं नदारद हैं या फिर शिथिल किंवा सुप्त सी। यदि हम शिक्षा का समुचित लाभ उठाना चाहते हैं तो ऐसी सुविधाओं का समुन्नत होना जितना जरूरी है, उतना ही आवश्यक है उनका सक्रिय उपयोग।

आजकल हमारे देश में सब जगह अंग्रेजी माध्यम की स्कूलों का प्रचलन है, प्रतिष्ठा के रूप में भी और शिक्षा की गुणवत्ता की साक्षी के तौर पर भी। परन्तु विचारणीय बात है कि बालक अपनी मातृभाषा में जितना अधिक अच्छी प्रकार समझ और व्यक्त कर सकता है, उतना अन्य भाषा या भाषाई परिवेश में कतई नहीं। शिक्षाविदों की मान्यता में भी प्राथमिक शिक्षा तो मातृभाषा अथवा देश की भाषा में ही होनी चाहिए। हाँ, आगे जा कर अन्य भाषाएं पूरी निपुणता के साथ सीखी जा सकती है पर जब तक प्रशासनिक, व्यापारिक तथा सामाजिक जगत में मातृभाषा को महत्त्व नहीं दिया जाएगा अथवा हीन दृष्टि से देखा जाएगा, तब तक थोपी गई भाषा में पढ़ना मजबूरी ही कहलाएगी। इस विषय पर बहुत विस्तार से चर्चाएं हो चुकी है। फिर भी मेरी मान्यता है कि अन्य भाषाओं पर आश्रित शिक्षा अंतर्चेतना विकसित करने का काम नहीं कर पाएगी और शिक्षा सम्पूर्ण रूपेण सार्थक नहीं हो पाएगी।

कुल मिलाकर हमें शिक्षा का एक निर्माणकारी स्वरूप अपनाना है जिसमें बच्चों में पूर्ण मानवीयता की संस्कृति स्थापित की जा सके, उन्हें सच्चा राष्ट्रीय नागरिक, समूचे विश्व के उदार चरित्र को अपनाने की सभ्यता दी जा सके तथा अपने जीवन के प्रतिष्ठासम्पन्न निर्वाह का अधिकार दिया जा सके, जिसमें अध्यापकों को आदर्श, आदर और विश्व के मंगलकारी समन्वय की भूमिका निभाने के अवसर दिए जा सकें, और विश्व को शान्ति, प्रेम और अहिंसा के मार्ग से कल्याणयुत् चतुर्दिक प्रगति से सम्पन्न किया जा सके। बात इकाई से लेकर समष्टि तक इसी भावना से प्रेरित और प्रवर्तित रहे तब ही हमारी शिक्षा सार्थक और मंगलकारी हो सकेगी। शिक्षा की परम्परा का स्वरूप हम युग के साथ भले ही बदलें मगर शिक्षा के तत्त्व हरदम शाश्वत और सर्वव्याप्त ही रहने चाहिए। हमारी किसी भी वैज्ञानिकता की तलाश में आध्यात्मिक मूल्य बोध नहीं खोने चाहिए जिनका उद्‌गम स्थल भारतवर्ष सदा से रहा है।

स्मृति, 141/ए गणेश नगर, इस्कॉन रोड़, मानसरोवर, जयपुर 302020

शिक्षा की अनिवार्यता

प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संविधान के अध्याय चार में वर्णित नीतिनिर्देशक तत्वों में अनुच्छेद 45 के अन्तर्गत यह व्यवस्था की गयी थी कि देश में संविधान लागू होने के बाद दस वर्ष की अवधि में 14 वर्ष तक के बालकों के लिए शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य कर दी जाएगी। वे दस वर्ष तो कभी के पूरे हो चुके। संविधान लागू होने के लगभग 60 वर्ष बाद देश की सरकार का उस तरफ ध्यान गया और तदनुसार शिक्षा को मुफ्त और अनिवार्य बनाने के लिए कानून बनाया गया। गरीब बच्चों को उसे सहज सुलभ बनाने के लिए वर्ष 2010 में केन्द्र सरकार ने अपने कानून में राज्य सरकारों को यह भी निर्देश दिया कि प्रत्येक निजी शैक्षणिक संस्था में भी न्यूनतम 25 प्रतिशत बच्चों को निःशुल्क शिक्षा दी जाए और उनकी शिक्षा का स्तर वैसा ही जो, जैसा कि शुल्क देने वाले बच्चों का होता है। समवर्ती सूची का विषय होने के कारण शिक्षा संबंधी इस कानून पर राज्य सरकारों की भी सहमति वांछित थी। अभी तक केन्द्र के इस नियम को 15 राज्यों ने ही स्वीकार किया और उसकी क्रियान्विति में लिए निर्देश जारी किये हैं। शेष राज्यों में यह विचाराधीन ही है। केन्द्र सरकार ने अपने इस आदेश की क्रियान्विति के लिए राज्यों को तीन वर्ष का समय दिया है, इसलिए राज्यों को इस पर निर्णय लेने की शीघ्रता भी दृष्टिगत नहीं होती।

जिन राज्यों ने केन्द्र के इस नियम को अपने यहाँ लागू करके तत्संबंधी निर्देश जारी किये, वहाँ यह स्थिति संतोष-जनक नहीं है। सर्वप्रथम तो यह नियम बनने के तत्काल बाद प्राईवेट स्कूलों ने अपने यहाँ शुल्कों में बेतहाशा वृद्धि कर दी, ताकि गरीब बच्चे वहाँ जाने की सोच ही न सकें और कुछ बच्चों को निःशुल्क प्रवेश देने की विवशता में उसकी क्षतिपूर्ति भी की जा सके। राज्य सरकारें इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण लगाने में असमर्थ रहीं। यह एक तरह से छात्रों का मानसिक शोषण था। उसके बाद भी जो गरीब बच्चे उन स्कूलों में गये, उन्हें किसी न किसी बहाने वहाँ से भगा दिया गया। **गरीब व्यक्ति को न तो कानून कायदों की ज्यादा जानकारी होती है और न उनके पास अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की पर्याप्त क्षमता। इसलिए बहुत कम प्राइवेट स्कूलों में ही गरीब बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जा सके, लेकिन वहाँ भी उनके लिए अलग कक्षाएं बनायीं गयीं और अपेक्षाकृत कम योग्यता और कम वेतन वाले शिक्षकों को उन्हें पढ़ाने के लिए रखा गया।**

प्रश्न उठता है कि गरीब व्यक्ति निजी स्कूलों की तरफ भागता ही क्यों है? सामान्यतः तो सरकारी स्कूलों में शिक्षक अधिक योग्य और कुशल होते हैं, जो अनेक परीक्षाओं की अड़चनों को पार करते हुए वहाँ तक पहुँचते हैं। यह बात अवश्य है कि सरकारी स्कूलों में न तो वैसे संसाधन होते हैं और न वह चमक-दमक, जो निजी स्कूलों मे होती है। लेकिन माध्यमिक कक्षा तक आम छात्र के लिए वैसे संसाधन और चमक-दमक की आवश्यकता भी नहीं होती। यह भी आम मान्यता है और वह पूर्णतः गलत नहीं है कि सरकारी स्कूलों में शिक्षक पूरी रुचि के साथ बच्चों को नहीं पढ़ाते। यह बात कहीं-कहीं सत्य अवश्य है, लेकिन हर जगह नहीं। जहाँ पर ऐसा होता है, उसके लिए संबंधित शिक्षक तो दोषी हैं ही, शैक्षणिक अधिकारी भी कम दोषी नहीं है, जिन पर अपने क्षेत्र की शिक्षण संस्थाओं की जांच पड़ताल का अधिकार है। इस जन मान्यता के कारण ही केवल अमीर लोग ही नहीं, गरीब व्यक्ति भी, यहाँ तक कि झाड़ू-पौंछा करने वाले बाईयां भी अपने बच्चों को यथासंभव निजी स्कूलों में ही भर्ती करना चाहती है। ममता से वशीभूत होकर इसके लिए वे स्वयं भूखे रहने अथवा अन्य कष्ट सहन करने के लिए भी तैयार रहती हैं। विज्ञापन के सरकारी माध्यम भी बच्चों की शिक्षा पर तो जोर देते हैं, लेकिन सरकार स्कूलों में प्राप्त सुविधाओं पर जोर नहीं देती। मसलन वास्तविक निःशुल्क शिक्षा, बस्ते के भारीपन से मुक्ति और योग्य शिक्षकों द्वारा शिक्षा। निजी स्कूल, अभिभावकों को प्रभावित करने के लिए बच्चों से ढेर सारी पुस्तकें मंगवाकर उनके बस्ते को अनावश्यक ही बहुत भारी कर देते हैं। इन पुस्तकों में से अनेक पुस्तकों को तो वे स्कूल, वर्ष पर्यन्त बच्चों से खुलवाने

तक की आवश्यकता नहीं समझते। उन्हें पूरी तरह पढ़ने और समझने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। फिर निजी स्कूलों में बच्चों की पुस्तक, कॉपी तथा ड्रेस तक की व्यवस्था स्कूल द्वारा की जाती है, जिसके लिए अभिभावकों को भारी भरकम धन जमा करवाना पड़ता है और स्कूल उससे काफी अधिक लाभ कमाते हैं। सरकार स्कूलों में यह धोखा-धड़ी नहीं होती। वहाँ शिक्षा में व्यावसायिक मनोवृत्ति से बचा जाता है और सभी गरीब अमीर बच्चों का प्रवेश आसानी से हो जाता है सामान्यतः वहाँ पुस्तकों का मुफ्त वितरण होता है। साधारणतः यूनीफार्म की भी झंझट नहीं होती। बस्ते को अनावश्यक रूप से भारी–भरकम बनाने पर भी वहाँ जोर नहीं होता। इन सब बातों का जनता में प्रचार किया जाना आवश्यक है, ताकि सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या कभी भी कम न रहे। इससे निजी स्कूलों की दादागिरी भी रोकी जा सकती है।

सरकारी स्कूलों में शिक्षकों का प्रशिक्षण कार्यक्रम भी समय-समय पर चलता रहना चाहिए। इस प्रशिक्षण में विषय की नयी जानकारी तथा अध्यापन की नयी पद्धतियों का ज्ञान दिया जाना आवश्यक है। यदाकदा देखा गया है कि प्रशिक्षण की अवधि में गाना बजाना या गप-शप आदि करके ही प्रशिक्षण की इतिश्री कर दी जाती है। यह गलत है। प्रशिक्षण देने वाले शिक्षकों का चयन भी सोच-समझकर किया जाना चाहिए। शिक्षा में किसी भी स्तर पर राजनीतिक घुसपैठ तो पूरी तरह प्रतिबंधित रहनी ही चाहिए। इस संदर्भ में शिक्षकों की नियुक्ति और उन पर प्रशासनिक नियंत्रण से भी राजनेताओं को दूर रखा जाना चाहिए। उनकी दैनिक गतिविधियों पर तथा शिक्षण कार्य के प्रति निष्ठा जैसे कार्यों पर निगरानी के कार्य और उसके लिए सक्षम अधिकारी को रपट देने का कार्य अवश्य पंचायत या पंचायत समितियों को दिया जा सकता है, लेकिन उसके लिए यह देखना भी आवश्यक है कि निगरानी रखने वाले व्यक्ति स्वयं भी पर्याप्त रूप में शिक्षित और समझदार हों।

उचित प्रशिक्षण के अभाव में शिक्षकों का स्तर किस तरह गिर जाता है, इसका उदाहरण हमें बिहार में मिला। वहाँ शिक्षकों की एक परीक्षा ली गयी, जिसमें केवल पाँचवीं कक्षा के प्रश्न थे। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस परीक्षा में भी 8,884 शिक्षक फेल हो गये। इसलिए देश में शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए शिक्षकों के भी ज्ञान का विकास आवश्यक है। यह भी जरूरी है कि शिक्षकों की नियुक्ति केवल 'लोक सेवा आयोग' जैसे निष्पक्ष और स्तरीय संस्था से लिखित परीक्षा के द्वारा इस प्रकार करवाई जाये कि उसमें सब कुछ शिक्षक की योग्यता पर निर्भर हो। किसी भी व्यक्ति विशेष के हाथों में नियुक्ति संबंधी विशेष अधिकार न हों। कुछ राज्यों में नाम मात्र के वेतनमान पर 'अर्द्ध शिक्षक' या 'शिक्षामित्रों' की नियुक्ति की जाती है, जिसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। शिक्षक को पूर्णकालिक शिक्षक के रूप में ही नियुक्त किया जाना चाहिए और उनका वेतनमान तथा सम्मान, समस्तरीय किसी भी दूसरे पद की तुलना में अधिक हो। यह भी आवश्यक है कि शिक्षक से केवल शैक्षणिक कार्य ही लिये जाएं। उसे अन्य कार्यों में उलझाकर शिक्षण कार्य को बाधित न किया जाए।

उचित प्रशिक्षण के अभाव में शिक्षकों का स्तर किस तरह गिर जाता है, इसका उदाहरण हमें बिहार में मिला। वहाँ शिक्षकों की एक परीक्षा ली गयी, जिसमें केवल पाँचवीं कक्षा के प्रश्न थे। यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इस परीक्षा में भी 8,884 शिक्षक फेल हो गये। इसलिए देश में शिक्षा की गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए शिक्षकों के भी ज्ञान का विकास आवश्यक है।

आजकल सरकार और सरकार से जुड़ी शिक्षण संस्थाओं में परीक्षाओं के विरुद्ध माहौल जोर-शोर से तैयार किया जा रहा है। कहा जा रहा है कि परीक्षाओं से बच्चे के मस्तिष्क पर अनावश्यक काफी अधिक दबाव पड़ता है। इसीलिए सी.बी.एस.ई. ने दसवीं तक बच्चों को पास करना अनिवार्य कर दिया है। राजस्थान सहित कुछ राज्य सरकारों ने आठवीं तक बच्चों को पास करना आवश्यक किया है। बच्चों को कुछ आता हो या न आता हो, वे स्कूल भी नियमित रूप से आते हों या न आते हों, कक्षा में बैठते हों या न बैठते हों, वे आठवीं या दसवीं तक का तो प्रमाण पत्र ले ही लेते हैं। इससे सरकार उन्हें शिक्षित मानते हुए अपनी शिखा के आंकड़ों को बढ़ा-चढ़ाकर बता सकती है। ये आठवीं या दसवीं तक का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने वाले बच्चे कभी-कभी तो साधारण पुस्तक तक नहीं पढ़ पाते। अखबार पढ़ना तो उनके लिए बहुत दूर की बात है। तब हम यह कैसे आशा कर सकते हैं कि वे नागरिकता को भली-भांति समझकर अच्छे नागरिक भी बन सकेंगे और 'वोट' के महत्त्व को समझते हुए सही ढंग से मतदान कर सकेंगे। निश्चित ही इस सोच को सही नहीं कहा जा सकता। परीक्षाओं पर बहुत अधिक जोर देकर बच्चों को तनावग्रस्त नहीं बनाने की बात अवश्य समझ में आ सकती है। इसलिए किसी भी अंतिम परीक्षा के स्थान पर बच्चों का नियमित मूल्यांकन किया जाना चाहिए और उस मूल्यांकन को भी सहज और खेलकूद की भावना के साथ बच्चों के सम्मुख रखना चाहिए। इस मूल्यांकन के आधार पर ही बच्चों को अगली कक्षा में प्रवेश देना चाहिए। यदि परीक्षा नहीं होगी तो बच्चे क्यों पढ़ाई की तरफ ध्यान देंगे और शिक्षक भी क्यों उनके साथ माथापच्ची करेंगे? बच्चों में पढ़ाई के प्रति, प्रतियोगिता की भावना भी कैसे आयेगी और अधिक अंक प्राप्त करके अन्य छात्रों में अपना ऊँचा स्थान बनाने का आकर्षण भी कैसे रहेगा? फिर यह भी विचारणीय है कि

इस प्रक्रिया से आठवीं या दसवीं पास करने वाले बालकों को आगे चलकर ऊँची कक्षा की प्रवेश प्रक्रिया में या प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठना पड़ेगा तब उसकी स्थिति क्या होगी? उस समय पढ़ाई बीच में ही छोड़ने के अतिरिक्त

उसके पास अन्य कोई विकल्प बचेगा ही नहीं। राजस्थान सरकार तो इन दिनों इस आश्चर्यजनक प्रस्ताव पर भी विचार कर रही है कि प्राथमिक शिक्षा में बच्चों को उनकी आयु के अनुरूप प्रवेश दे दिया जाए। छोटे बच्चों को छोटी कक्षा में और बड़े बच्चों को बड़ी कक्षा में।

पढ़ाई को बीच में ही छोड़ने वाले बच्चों की संख्या भी देश में कम नहीं है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2008-2009 तथा 2009-2010 में देशभर के 26 लाख बच्चों ने स्कूल छोड़ दिया। अवश्य ही इसके पीछे कहीं आर्थिक कारण रहा होगा और कहीं पारिवारिक विवशताएं। लेकिन शिक्षा के प्रति अरुचि या बिगड़ता हुआ शैक्षणिक वातावरण भी इसके लिए कम उत्तरदायी नहीं। 'दिल्ली बाल संरक्षण आयोग' के पास शिक्षा के अधिकार के क्रियान्वयन को लेकर 12,400 शिकायतें मिलीं, जिनमें नौ हजार से अधिक शिकायतें आर्थिक दृष्टि से कमजोर बालकों की है। आयोग को 9,789 शिकायतें ऐसी भी मिलीं, जो निजी स्कूलों द्वारा गरीब बच्चों को प्रवेश देने से मना करने को लेकर थीं।

छात्रों के अनुपात में शिक्षकों के अभाव की बात भी अक्सर सुनने को मिलती है। हमारे यहाँ 2010 तक लगभग 6 लाख शिक्षकों की कमी थी। जब अकेला शिक्षक दो-दो तीन-तीन कक्षाओं को लेकर बैठता है तो हम उससे स्तरीय शिक्षा की अपेक्षा नहीं कर सकते। स्कूलों में सामान्य वातावरण की तरफ भी ध्यान देना आवश्यक है। इस समय देश में लगभग 40 प्रतिशत स्कूलों में लड़कियों के लिए शौचालय तक नहीं है। बालिकाओं के यौन शोषण की बात भी यदाकदा सुनने को मिल जाती है। तब, बालिकाओं की संख्या तथा शिक्षा में वृद्धि की आशा कैसे की जा सकती है? लगभग 50 प्रतिशत स्कूलों में खेल के मैदान नहीं है। तब, भावी भारत को सचिन, धोनी और सहवाग जैसे खिलाड़ी कहाँ से मिलेंगे? स्कूल में फर्नीचर, बिजली तथा पानी आदि की भी उचित व्यवस्था आवश्यक है। **अब भी देश में लगभग 85 लाख बच्चे स्कूली शिक्षा के दायरे से बाहर हैं। हमें उन्हें शिक्षा के साथ जोड़ना होगा। इसके लिए शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के साथ ही राजनीतिक और प्रचारात्मक स्तर पर भी पूरा ध्यान देना होगा। इसके लिए शिक्षकों को प्रोत्साहन देने के साथ ही राजनीतिक और प्रचारात्मक स्तर पर भी पूरा ध्यान देना होगा। हमारे यहाँ के छात्र किसी भी दृष्टि से विश्वभर के छात्रों की तुलना में पीछे नहीं है।** इसीलिए आज भी अमरीका के राष्ट्रपति अपने नागरिकों के सम्मुख भारत के छात्रों का उदाहरण देते हुए उन्हें भी हमारे समान आगे बढ़ने का आह्वान करते हुए दिखलाई देते हैं। 'नासा' जैसी संस्था में भी लगभग 47 प्रतिशत स्थानों पर भारतीयों ने ही अपना दबदबा बनाया हुआ है। हमारे यहाँ शिक्षा में सुधार के लिए स्वतंत्रता के बाद से अब तक तीन आयोग, 15 से अधिक कमेटियां तथा उनकी हजारों पृष्ठों की रिपोर्टें सामने आ चुकी हैं, लेकिन हमने अभी तक उनमें से किसी पर भी गहराई से सोच-समझकर कोई विशेष कार्य नहीं किया। अब आवश्यकता उनकी क्रियान्विति की है। मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा की वैधानिक व्यवस्था को अब हमने लागू करने का बीड़ा उठा लिया है, यह बहुत अच्छी बात है। हमें अब इसकी सही क्रियान्विति और शिक्षा की गुणवत्ता पर विशेष ध्यान देना होगा। जनतंत्र की सफलता सुशिक्षित जनता पर ही निर्भर करती है। हमें इस विचार के साथ आगे चलकर अपने जनतंत्र को सफलता और विकास की ओर द्रुत गति से आगे बढ़ाना है।

10/611, मानसरोवर
जयपुर-302020 (राजस्थान)

सद्गुरु

केवल एक ही चमत्कार है, जो असंभव जैसा है और वह है बस सहज, साधारण बनकर रहना। मन की कामना होती है- असाधारण बनना। एक बार ऐसा हुआ कि बांके अपने बगीचे में काम कर रहा था। कोई खोजी, सद्गुरु की तलाश में आया और उसने बांके से पूछा, 'ऐ माली! सद्गुरु यहां कहां रहते हैं?' बांके हंसा और उसने कहा, 'प्रतीक्षा करें। उस दरवाजे के पास जाएं, अंदर तुम सद्गुरु को पाओगे।' इसलिए वह व्यक्ति घूमता हुआ उस दरवाजे के अंदर पहुंचा, उसने देखा कि सद्गुरु की चौकी पर वही व्यक्ति बैठा हुआ है, जो बाहर माली का काम कर रहा था। उस व्यक्ति ने कहा, 'क्या तुम मजाक कर रहे हो? फौरन सद्गुरु की चौकी से नीचे उतरो। इस पवित्र आसन पर आरूढ़ होकर तुम अधार्मिक कृत्य कर रहे हो। तुम अपने सद्गुरु के प्रति जरा भी सम्मान नहीं रखते।'

बांके चौकी से उतरकर नीचे जमीन पर बैठ गया और कहा, 'अब तुम्हारा उनसे मिलना कठिन है। अब तुम यहां सद्गुरु को न खोज पाओगे, क्योंकि मैं ही सद्गुरु हूं।'

उस व्यक्ति के लिए यह देख पाना बहुत कठिन था कि एक महान सद्गुरु बगीचे में माली जैसा साधारण काम भी कर सकता है। वह चुपचाप वापस चला गया। वह विश्वास ही नहीं कर सका कि यह साधारण-सा व्यक्ति ही सद्गुरु था। वह उससे चूक गया। हम सभी किसी असाधारण की खोज में है, लेकिन तुम क्योंकि असाधारण की खोज में हो! यह इस कारण है, क्योंकि तुम भी असाधारण बनना चाहते हो। एक साधारण सद्गुरु के साथ तुम कैसे असाधारण और अद्वितीय बन सकते हो।

ओशो

आधुनिक शिक्षा का कड़वा सच

अशोक सहजानन्द

समीक्षा तो हर काम की होती है। पाठ्यक्रम और उसकी उपयोगिता की भी समीक्षा होनी चाहिए। उसमें जो अनुपयोगी है, उसे छोड़ देना चाहिए। कुछ उपयोगी और नयी बात जोड़ देनी चाहिए। छोड़ने-जोड़ने का यह क्रम बराबर चलते रहना चाहिए। इससे विकास होगा। सब बुद्धिजीवी मिलकर कुछ नया चिंतन शुरू करें तो शिक्षा का प्रारूप ढंग से उजागर हो सकेगा।

जिन कुछ लोगों से मेरा परिचय है उनसे मैं परिवार के लिए कुछ अच्छी पत्र-पत्रिकाओं को मंगाने का सुझाव देता हूँ। प्रायः उनका कहना होता है—अजी साहब पढ़ने का समय किसको है। मंगा भी लें तो रद्दी में बेचनी पड़ती है। बच्चे-बच्चियों को स्कूल व ट्यूशन से फुर्सत ही नहीं मिलती।''

आज ट्यूशन का कारोबार इतना अधिक बढ़ गया है कि उसने शिक्षा के मूल स्वरुप को ही विकृत कर दिया है। आज शिक्षक का मुख्य कार्य ट्यूशन हो गया है और विद्यालयों-महाविद्यालयों में नियमित शिक्षण कार्य गौण हो गया है। जो मुख्य होना चाहिए था वह गौण और जो गौण होना चाहिए था वह मुख्य हो चला है। येन-केन-प्रकारेण ज्ञान बेचा जा रहा है जहाँ न कोई आदर,, न कोई विनय-वात्सल्य और न कोई गुण ग्राह्यता। मात्र तोता-रटन और परीक्षाओं का सांख्यिकी परिणाम। गरीब विद्यार्थी भले होनहार क्यों न हो? यदि अर्थाभाव से कोचिंग नहीं ले पाता तो बेबस भाग्य पर जीवन-भर-रोते रहने को मजबूर हो जाता है। शिक्षा में ट्यूशन की इस लूट ने शिक्षा के पूरे वातावरण को ही प्रदूषित कर दिया है। ट्यूशन की यह बीमारी शहर से गाँव सभी जगह फैलती जा रही है।

ट्यूशन से भी बदतर हालत उन लोगों व शिक्षकों द्वारा पैदा की जा रही है, जो परीक्षाओं में अवैधानिक तरीकों से धन-लोलुपता के वशीभूत होकर विद्यार्थियों को उत्तीर्ण करने में लगे हुए हैं। स्थानीय परीक्षाओं में शिक्षकों द्वारा जाँची जाने वाली उत्तर-पुस्तिकाओं में अंक देकर अवैधानिक तरीकों से उत्तीर्ण करने की परिपाटी से शिक्षा में लग रही भयानक धुन से निजात पाना कठिन है।

जाली प्रमाण-पत्र और उपाधियाँ बनाने व मुँह माँगे कीमत पर बेचने का धंधा बड़े ही जोरों से चल रहा है। न पढ़ने का झंझट, न परीक्षा देने की तकलीफ और न ही वर्षभर विद्यालय या महाविद्यालय में जाने का झंझट। सब कुछ घर पर ही। बना-बनाया हलवा। शिक्षा जगत का यह सुलगता नासूर है।

शिक्षा में सुराख करते-करते कदम इतने से रहे हैं कि शिक्षक अपने शिष्य और शिष्याओं को अपनी हवस का शिकार बना रहे हैं। विद्यालयों और महाविद्यालयों में पढ़ रही बालक-बालिकाओं को गुमराह कर गुंडागिर्दी के माहौल में सहपाठियों द्वारा ऐसा घिनौना कार्य करने व उन्हीं के सहयोग से शिक्षकों द्वारा प्रताड़ित करने के समाचार आए दिन देखे व पढ़े जा रहे हैं। गुरु और शिष्य के पवित्र रिश्ते, एक अभिशाप के रूप में शर्मसार कर रहे हैं। जो येन-केन-प्रकारेण पैसों से, झगड़ों से, फिरौती से या आतंकी भय से जोड़ने का उपक्रम है। शिक्षकों का बढ़ता दुस्साहस शिक्षा के नाम पर कलंक है। शिक्षा रूपी मूल यदि ऐसे भ्रष्ट व जहर भरी गतिविधियों से संचित होगी तो फल किस रूप में मिलेंगे।

आज शिक्षा की गंगा फैली है। सहस्त्रग्रीव भ्रष्टाचार किस तरह समाज को अपनी 'ओक्टोपस' गिरफ्त में ले चुका है, इसे विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है। शिक्षा भी अपने विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार से अभिशप्त है। इन हालत को देखकर दुष्यन्त याद आ जाते हैं।

इस सड़क पर इस कदर कीचड़ बिछी है।
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।।

स्वतंत्रता आंदोलन ने आजाद भारत को एक थाती सौंपी थी। वह थाती थी देश के, समाज के नवनिर्माण की। आज वह थाती नष्ट हो रही है। देश के बुद्धिजीवियों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस थाती की रक्षा करें। आजादी के बाद होना यह चाहिए था कि शिक्षा के निचले पायदान यानी प्राथमिक शिक्षा को मजबूत बनाकर इस दिशा में सार्थक पहल की जाती। इसके लिए प्राचीन

शिक्षा व्यवस्था का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाना आवश्यक था। मगर नीति नियोजन और चिंतन के गहरे अंतर्विरोधों के कारण यह नहीं किया गया। दरअसल हमारी शिक्षा के नीति-नियोजकों के बीच का सशक्त तबका ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज की भव्यता से प्रभावित था और यह नालन्दा और तक्षशिला के देशज मॉडल से प्रेरणा लेने में असमर्थ रहा।

आज की सबसे बड़ी विडम्बना है कि सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में सिर्फ वे ही बच्चे दाखिला ले रहे हैं जिनके पालक निजी स्कूलों का खर्च नहीं उठा सकते। और इनमें से भी अधिकांश बच्चे गणवेश, मध्याह्न भोजन और छात्रवृत्ति के उद्देश्य से ही नामांकित होते हैं।

शिक्षा के बाजारीकरण से उच्च गुणवत्ता और अधिक अवसर प्रदान करने वाली शिक्षा पर पूरी तरह अभिजात्य वर्ग का कब्जा हो जायेगा। काफी हद तक ऐसा पहले से ही है। ले-देकर थोड़े से अवसर सामान्य लोगों को मिल जाते थे, वे भी समाप्त हो जायेंगे। आने वाले वर्षों में वंचित वर्ग की कुंठित प्रतिमाओं के आक्रोश का ज्वालामुखी फूटेगा तब क्या होगा?

आजकल स्कूलों की श्रेष्ठता का एक ही मापदंड है—संपूर्ण ए.सी.रूम, हाई-टेक कम्प्यूटर रूप, सुसज्जित जिम, अंग्रेजी में बितियाने वाली तेज-तर्रार टीचर जो पैरेंट-टीचर मीटिंग में फर्राटेदार अंग्रेजी बोलकर माँ-बाप को शर्मसार कर सकें तथा डेशिंग एन्युअल फंक्शन जिसमें बॉलीवुड का कोई बड़ा स्टार आ जाए तो समझो कि अगले साल सारा शहर उस स्कूल का दीवाना हो जाएगा।

नर्सरी लेवल से लैपटॉप पर पढ़ने वाले व हर साल विदेश की यात्रा पर जाने वाले ये नौनिहाल ही देश के भावी कर्णधार बनते हैं। आज भी हमारे मंत्रियों, अभिनेताओं, अफसरों व उद्यमियों में दून व लारेंस स्कूल से पढ़ने वालों की संख्या काफी अधिक हैं। आम लोगों के बच्चे तो इस ओलम्पिक रेस से बहुत पहले से ही बाहर हैं।

जीवन की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी हो जाए तो आदमी को सुखी और संतुष्ट हो जाना चाहिए किन्तु ऐसा होता नहीं है। शरीर की आवश्यकता पूरी होने के बाद मन की आवश्यकताएँ सिर उठाने लगती है। उनकी माँग बढ़ जाती है और माँग पूरी न होने पर बैचेन होता है, अशांति पैदा होती है। बड़ी दिलचस्प बात है कि जिनके पास शरीर की आवश्यकता के प्रचुर साधन हैं, उनके मन की माँग बहुत ज्यादा है और ऐसे लोगों का मन भी बहुत अशांत होता है। एक साधारण किसान या मजदूर अपनी स्थिति पर संतुष्ट रहता है किन्तु एक धनी व्यापारी या पूंजीपति हर समय अशांत और असंतुष्ट रहता है। वह जितने अपने लिए नये-नये साधन जुटाता है, उतनी ही मन की माँग बढ़ती जाती है। उच्च रक्तचाप और अवसाद के शिकार वे लोग ज्यादा हैं जिनके पास जरूरत से ज्यादा है।

कुछ दिन पहले समाचार में पढ़ा था-हिन्दुस्तान में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या पाँच करोड़ है। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी अगर आदमी को कोई रोजगार या कार्य नहीं मिलता तो वह गलत रास्ता पकड़ लेता है फिर उसके मन में विद्रोह पैदा होता है या कुंठा पैदा होती है। यह एक ज्वलन्त प्रश्न है कि शिक्षा प्राप्त कर भी परावलम्बी बना रहा तो उस शिक्षा का औचित्य क्या है? जो उसे हिंसा की ओर ढकेलती है।

आज की समस्या यह है कि बौद्धिक विकास तो बहुत ज्यादा हो रहा है किन्तु उसी मात्रा में उसके साथ-साथ भावात्मक विकास नहीं हो रहा है। यही कारण है कि अनैतिक कार्य में जो प्रमुख रूप से संलग्न हैं, उनमें पढ़े-लिखे लोगों की संख्या ज्यादा है। चाकू की धार तेज है किन्तु उसमें खोल और कवर नहीं है तो वह काटेगा जरूर। बुद्धि तेज हो गई, तर्क शक्ति बढ़ गई, किन्तु भावात्मक शक्ति उसी मात्रा में तेज नहीं है तो फिर आदमी अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करने लगेगा। वह विकास में नहीं, विनाश में ज्यादा रुचि लेगा। अनुभव का क्षेत्र अलग है और तर्क का क्षेत्र अलग है। व्यवहार में यदि तर्क आ जाए तो वह व्यवहार को गड़बड़ा देगा।

वर्तमान की परीक्षा प्रणाली को मैं ठीक नहीं मानता। परीक्षार्थी के सामने जिस विषय की परीक्षा लेनी हो उस विषय से संबंधित सारी सामग्री रख दी जानी चाहिए। परीक्षा हो समझ की न कि स्मृति की। जो अब तक पढ़ा, उसे कितना समझा, परीक्षा इस बात की होनी चाहिए। एक परीक्षा हो कंठस्थ ज्ञान की। तुमने जो पढ़ा वह अब तक कितना कंठस्थ है। एक परीक्षा इसकी हो कि अभिव्यक्ति की क्षमता कितनी बढ़ी है? किन्तु ऐसा न होकर परीक्षा इस तरह ली जाती है कि परीक्षा से महीनों पूर्व विद्यार्थी तनाव में आ जाता है और परीक्षा के बाद भी उसके परिणाम को लेकर तनावग्रस्त रहता है।

समीक्षा तो हर काम की होती है। पाठ्यक्रम और उसकी उपयोगिता की भी समीक्षा होनी चाहिए। उसमें जो अनुपयोगी है, उसे छोड़ देना चाहिए। कुछ उपयोगी और नयी बात जोड़ देनी चाहिए। छोड़ने-जोड़ने का यह क्रम बराबर चलते रहना चाहिए। इससे विकास होगा। सब बुद्धिजीवी मिलकर कुछ नया चिंतन शुरू करें तो शिक्षा का प्रारूप ढंग से उजागर हो सकेगा।

संपादक : 'सहज-आनन्द' (त्रैमासिक)
239, दरीबाकलां, दिल्ली--110006

भविष्य उज्ज्वल बना रहे

कौशल मिश्र

आज की खुशी के लिए भविष्य के खतरों से आँख मूंद लेना हमारी फितरत बनती जा रही है, जबकि होना यह चाहिए कि आज सावधानी बरतते हुए भविष्य को सुदृढ़ और सुखद बनाने का हर संभव प्रयास किया जाए। आदिकाल से लेकर आज तक शिक्षा कभी भी लापरवाही या नजरअंदाज का विषय नहीं रही है। मुनियों के आश्रम, मौलवियों के मदरसे, अंग्रेजों के स्कूल कभी अनदेखी के शिकार नहीं रहे हैं। आज हम मैकाले का नाम लेकर अंग्रेजी शिक्षा को चाहे कितना भी कोस लें, किन्तु इस सच से आँख बन्द नहीं कर सकते कि शिक्षा के प्रति गंभीरता, सतर्कता और जागरूकता उसमें भी थी।

पिछले कुछ वर्षों से मानव संसाधन मंत्री कपिल सिब्बल शिक्षा पद्धति में आमूलचूल परिवर्तन करते जा रहे हैं। ऐसा प्रचार किया जा रहा है कि नवनिर्मित शिक्षा प्रणाली छात्रों और अभिभावकों में तनाव-अवसाद दूर करेगी। सीबीएसई की नई शिक्षा प्रणाली देश में सारगर्भित शिक्षा देकर एक अच्छे समाज का निर्माण करेगी। राजस्थान बोर्ड भी धीरे-धीरे उसी दिशा में अग्रसर हो रहा है। हमें सोचना चाहिए कि जिस शिक्षा प्रणाली में कक्षा आठ तक असफल करने का प्रावधान तो हम पहले ही समाप्त कर चुके हैं और अब हम सी.जी.पी.ए. पद्धति लागू कर छात्र को बिना किसी गंभीर पढ़ाई के नवीं व दसवीं की परीक्षा भी पास करा रहे हैं। संक्षेप में सी.जी.पी.ए. प्रणाली को दो भागों में विभक्त किया गया है (1) 'फॉरमेटिव-असेसमेंट' और (2) 'समिटिव असेसमेंट' या यों कहिए 'पैन व पेपर टेस्ट'। पूरे सत्र में 'फॉरमेटिव' के चार टेस्ट लिए जाते हैं तथा पेन व पेपर के दो टेस्ट लिए जाते हैं। सीबीएसई प्रश्नों की एक सीडी भेजता है तथा सभी विद्यालयों को पूर्ण स्वतंत्रता है कि यदि वे चाहें, तो सीडी द्वारा भेजे गए प्रश्नों को परीक्षा में पूछें या विद्यालय द्वारा बनाए गए प्रश्नों को सीडी द्वारा भेजे गए प्रश्नों में मिलाकर प्रश्नपत्र तैयार कर लें। अगर विद्यालयों को ये दोनों विकल्प मंजूर नहीं हों, तो वे अपना प्रश्नपत्र बनाने के लिए भी पूर्ण स्वतंत्र हैं।

'फॉरमेटिव-असेसमेंट' के अन्तर्गत जिन चार टेस्ट के अंक समाहित किए जाने हैं, उनके लिए शिक्षक मनचाहे टेस्ट लेकर उनमें से सर्वाधिक अंक वाले चार टेस्ट के अंकों को शामिल कर लेता है। प्रतिशत के स्थान पर 'ग्रेड सिस्टम' को 'नौ ग्रेड' में विभक्त किया गया है। सीबीएसई ने निम्न ग्रेड में आने वाले छात्रों को भी पास करने का तरीका निकाल लिया है। इसका तरीका है 'लाइफ-स्किल्स', जिसमें कला, शारीरिक कौशल, नैतिक मूल्य आदि आते हैं। लाइफ-स्किल्स में ए-1 या ए-2 ग्रेड प्राप्त करने वाले छात्रों को परीक्षा में सफल मानकर पास कर दिया जाता है।

अभिभावक और छात्र अपने ग्रेड को लेकर प्रसन्न और उत्साहित हैं। यही छात्र जब कक्षा ग्यारहवीं में प्रवेश लेंगे तो या तो सीबीएसई कक्षा ग्यारहवीं के लिए भी यही नीति अपना लेगा, परन्तु यदि सीबीएसई ने ऐसा नहीं किया तो शिक्षक और विद्यालय बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा में छात्रों को उत्तीर्ण कराने के लिए कठोरता बरतेंगे। ध्यान रहे, यह कठोरता पहले से कहीं अधिक अवसाद व तनाव उत्पन्न करेगी।

उल्लेखनीय है कि करीब 70 प्रतिशत छात्रों ने सीबीएसई बोर्ड की परीक्षा की बजाय स्कूल की परीक्षा देना ही उचित समझा है। बोर्ड की परीक्षा में वही छात्र बैठे हैं, जिन छात्रों और उनके अभिभावकों ने पढ़ाई के महत्त्व को समझा है। हमें सस्ती लोकप्रियता के लिए शिक्षा प्रणाली से खिलवाड़ रोकना चाहिए और सशक्त शिक्षा प्रणाली का निर्माण करने का काम शिक्षाविदों को सौंपना चाहिए।

राजस्थान पत्रिका से साभार
18 जून 2011 अंक

वह पढ़ाई निरर्थक है, जिससे व्यक्ति में मानवता और चरित्र का विकास न हो।

◆ आचार्य तुलसी ◆

संप्रसारक :

एम.जी. सरावगी फाउंडेशन

41/1-सी, झावूतल्ला रोड, बालीगंज-**कोलकाता**-700019

● दूरभाष : 22809695

क्यों मारते हो मास्साब?

डॉ. विनोद गुप्ता

देश भर में स्कूली बच्चों को शिक्षकों द्वारा शारीरिक दंड देने के कई क्रूरतम मामले सामने आ रहे हैं। बच्चों के साथ होने वाले व्यवहार को न्यायालय तथा मानव अधिकार आयोग ने भी गंभीरता से लिया है, लेकिन इसके बावजूद शिक्षक अपनी आदतों से बाज नहीं आ रहे हैं।

कुछ दिन पूर्व किंडर गार्डन स्कूल के नन्हें मुन्ने बच्चों को गर्म नूडल्स के बर्तन में जबर्दस्ती हाथ डालने की सजा देने के आरोप में एक अध्यापिका पकड़ी गई जिसने गर्म नूडल्स हाथ से खाने की सजा दी थी। जब बच्चों ने ऐसा नहीं किया, तो उसने निर्ममता से इन बच्चों के हाथ जबर्दस्ती बर्तन में डाल दिये, जिससे बच्चों के हाथ जल गये।

एक अन्य स्कूल में एक प्राईमरी कक्षा की अध्यापिका ने होमवर्क न करके लाने वाले बच्चों को कक्षा के अन्य छात्रों के मुँह पर पाँच-पाँच सौ जोरदार तमाचे जड़ने का आदेश दिया। तीसरी कक्षा में पढ़ रहे छात्रों ने ये तमाचे खाए। तमाचे खाने के बाद लगभग गूंगे-बहरे बन चुके ये बच्चे जब अपने घर पहुँचे तो अचेत एवं निढाल पड़े रहे।

गुरु की तुलना कुम्हार से की गई है, जो बाहर से हल्का प्रहार करता है तो भीतर ही भीतर उतने ही प्रेम से सहलाता है। किन्तु आज के गुरुओं में यह करुणा और प्रेम कहाँ? यही कारण है कि स्कूली छात्रों के प्रति गुरुओं की हिंसा लगातार बढ़ रही है।

डंडे से मारना, हाथ-पाँव से मारना, कमरे में बंद कर देना, एक पाँव पर खड़ा करना, नाश्ता न करने देना, तेज धूप में दौड़ाना अथवा गंदी गालियाँ देकर शिक्षक बच्चे को काबू में रखने का प्रयास करते हैं। बच्चे रोते बिलखते हैं, चीखते चिल्लाते हैं, लेकिन पत्थर दिल शिक्षक के कानों पर जूं तक नहीं रेंगती। उल्टे वे यह घौंस देते हैं कि रोएगा तो और पिटेगा। सजा देने का भूत जब शिक्षकों पर सवार हो जाता है, तो उसका परिणाम नहीं देखते।

कोमल हृदय बालक के साथ जोर आजमाई करना, अपनी ताकत का घमंड दिखाना पहले दर्जे की निर्दयता और बेहयाई नहीं तो और क्या है? पता नहीं शिक्षक बच्चों पर अपना गुस्सा उतारकर किस अक्लमंदी का परिचय देते हैं? क्या उनके क्रूर व्यवहार से बच्चों के स्वाभिमान को ठेस नहीं पहुँचती? केवल बच्चे होने के कारण ही वे पिटें, अपमान सहें, यह कहाँ तक उचित है? यह मत भूलिए कि उनका भी स्वाभिमान हैं। चाहे जहाँ डॉट डपट देना, लाल-लाल आँख निकालना, बुरी तरह ताने मारना या दिल को भेदने वाले कठोर शब्दों द्वारा जब शिक्षक अपना क्रोध दिखाते हैं, तो उसका प्रभाव मारपीट से भी भयंकर और घातक होता है।

बच्चे की जरा सी शरारत या पढ़ाई में ढिलाई पर शिक्षकों का पारा सातवें आसमान पर पहुँच जाता है। अक्सर शिक्षक बच्चों को पिटाई की दहशत में रखकर पढ़ाई करने या शरारतों से छुटकारा दिलाने की सोचते हैं, लेकिन उन्हें बच्चों पर हाथ उठाने से पहले इस अध्ययन पर गौर फरमाना चाहिए।

न्यू हैम्पशायर के प्रोफेसर मुरे स्ट्रास ने 2 से 4 वर्ष तक की आयु के 806 बच्चों और 5 से 9 वर्ष की उम्र वाले 704 बच्चों का आई क्यू परीक्षण किया। चार वर्ष के अंतराल पर जब दोबारा इन बच्चों का आई क्यू परीक्षण किया गया तो चौंकाने वाली बातें सामने आई। दो से चार वर्ष की उम्र वाले बच्चों का आई क्यू उन बच्चों से 5 अंक ज्यादा पाया गया जिनकी पिटाई होती थी। जबकि 5 से 9 वर्ष की उम्र वाले बच्चों में न पिटने वाले बच्चों का आई क्यू अपेक्षाकृत 28 अंक ज्यादा था। पिटाई कम या ज्यादा होने का भी असर पड़ता है लेकिन शारीरिक प्रताड़ना का दिमाग पर बुरा असर पड़ता है। यदि बच्चे की हफ्ते में तीन से ज्यादा बार पिटाई करें तो मानकर चलें कि बच्चा तीव्र बुद्धि किसी कीमत पर नहीं हो सकता है।

शोधकर्त्ताओं ने पाया कि ज्यादा पिटाई से बच्चे का मानसिक विकास बाधित होता है तथा उसके आत्मविश्वास में कमी आने लगती है, उसकी पढ़ाई में रुचि घट जाती हैं। कभी-कभी इससे बच्चे जिद्दी भी बन जाते हैं। दरअसल शिक्षक बच्चों में सुधार की चाहत में ऐसा करते हैं, लेकिन दांव उल्टा पड़ जाता है।

सुप्रीम कोर्ट ने स्कूलों में शारीरिक प्रताड़ना देने पर 1 दिसम्बर 2007 को

प्रतिबंध लगाया था। कुछ राज्यों ने इस दिशा में कार्यवाही की है। हरियाणा में शारीरिक दंड देने पर प्रतिबंध लगाया गया है। यदि कोई शिक्षक शारीरिक दंड देने का आरोपी पाया गया तो उसकी नौकरी भी जा सकती है। विचारशील कार्यवाही के दौरान वेतनवृद्धि रोकने के अलावा उसकी सेवा में अवनति, बर्खास्त भी किया जा सकेगा।

शिक्षा के अधिकार के अंधविश्वास में बच्चों को शारीरिक दंड देना पूरी तरह प्रतिबंधित किया गया है। इस नियम को लागू किये जाने की मध्यप्रदेश में एक अनूठी पहल की जा रही हैं। प्रदेश के सरकारी स्कूलों में बच्चों को मास्साब क्यों मारते हैं, इसे लेकर पूछताछ होगी। प्रारंभिक चरण में 10 जिलों में एक-एक विकासखंड का चयन किया जाएगा। इन 10 विकास खंडों में से 10-10 शालाएं अध्ययन के लिए चुनी जाएंगी। इस तरह कुल 100 शालाओं को लेकर अध्ययन किया जाएगा। शिक्षा केन्द्र ने निजी संस्था से यह अध्ययन कराना तय किया है। इसके लिए विज्ञापन भी जारी किए जा रहे हैं जिसमें संस्था के लिए शोध कार्य में कम से कम पाँच साल का अनुभव व 15 लाख रूपए प्रतिवर्ष का टर्नओवर आवश्यक माँगा गया है। निजी संस्था अपने सर्वेक्षण से अध्ययन कराकर रिपोर्ट शिक्षा केन्द्र को देगी।

यह अध्ययन तीन प्रमुख बिंदुओं पर केंद्रित होगा। इसमें स्कूलों में शारीरिक दंड की क्या स्थिति है, शारीरिक मानसिक और आर्थिक और मर्यादित दंड का प्रभाव दंड की व्यवस्था को समाप्त करने के सुझाव शामिल हैं। चयनित शालाओं में शिक्षकों व विद्यार्थियों के मानसिक व व्यावहारिक पक्ष का अध्ययन होगा। इसमें शिक्षण पद्धति का आकलन करने के साथ शिक्षकों व विद्यार्थियों से बातचीत के आधार पर विश्लेषण होगा। कितने शिक्षकों ने बच्चों को शारीरिक दंड दिया, क्यों दिए, किस तरह का शारीरिक दंड दिए, क्या दंड के बाद सुधार आया, बच्चों ने दंड को लेकर क्या सोचा और महसूस किया, इन सभी बातों के जवाब शिक्षक और विद्यार्थियों से बातचीत करके लिए जाएंगे।

शिक्षण संस्थाओं में किसी भी तरह की शारीरिक या मानसिक प्रताड़ना को खत्म किया जाना चाहिए। शिक्षा और मारपीट दोनों बेमेल चीजें हैं। बच्चों को उनकी गलती का एहसास कराना तो जरूरी है, पर इनके लिए मारपीट क्यों? यह काम प्यार से भी तो किया जा सकता है। यदि डंडे के बल पर अनुशासन कायम है, तो यह अनुशासन नहीं शिक्षकों का आतंक है जिसे दूर करना आवश्यक है।

43/2 सुदामा नगर, रामटेकरी,
मंदसौर--(म.प्र.) 458001

हमारी आजादी प्रसन्न है?

हमारी आजादी प्रसन्न है?
प्रसन्न आदमी हैं औरतें हैं
सरकार है/शासक/प्रशासक हैं
हर कोई सचमुच में प्रसन्न हैं?
चौसठ वर्षीय आजादी में
पूरी की पूरी प्रसन्नता है?
सरकार चाहे जब-
लाठी चलवा सकती है
अश्रुगैस छोड़ सकती है
भ्रष्टाचारी को पनाह देती है
विदेशों में मुद्राएं जमा करती है
शासक/प्रशासक रिश्वत लेते हैं
धन जमा करते खुश है।
साधु/संतो-साध्वी/तमामों को
घायल कर दो/चूंकि आजादी का
यही सूत्र हैं?
हमारी आजादी प्रसन्न हैं
हमारे शासक प्रसन्न हैं
शासकों की जेबें प्रसन्न हैं
वे चाहे तो कुछ भी बन सकते हैं?
आजादी हड़पने के मूलमंत्र खरीदते हैं
हर आदमी उनके चरणों में दुबकते हैं?
हमारी आजादी प्रसन्न है।
प्रसन्न है तमाम शासक।
देश उनका होता है–
सेना/पुलिस/जहाज सबके सब
उनके ही होते हैं?
हमारे शासक प्रसन्न है
वही राजा रानी होते हैं
आम आदमी इसीलिए–
उनके लिए मर मिटते हैं?
तमाम आम आदमी प्रसन्न हैं
आदमी का अर्थ जानते हैं–
गोली खाते हैं, लाठी खाते हैं
अश्रुगैस पीते हैं, कारावास बैठते हैं
आजादी आम आदमी की नहीं होती है
आजादी शासक की कहलाती है
हमारी आजादी तभी प्रसन्न हैं
आर.एस.एस.तभी बंद हो गए थे
मीसा तभी तो बंद हो गए थे
आपातकाल तभी तो लगा था
रामदेव को तभी तो पकड़ लिया
सबके-सब बौने हैं
सिर्फ शासन ही प्रसन्न माने जाते हैं?
हमारी आजादी प्रसन्न है?
प्रसन्न ग्रामीण सभी है?
धरती उजड़ सकती है, उजाड़ी जा
सकती है?
कोई क्रय कर सकता है
गाँव के गाँव क्रय विक्रय होते हैं
ग्रामीण उलट सकते हैं
इसलिए गंवार माने जाते हैं?
कामधेनु मर सकती हैं
शासक, अंग्रेज बन सकते हैं
अंग्रेजी पढ़ा सकता हैं
चूंकि हमारी आजादी प्रसन्न है?

■ **सुरेश आनंद**
आनंद परिधि एल 62
पं. प्रेमनाथ डोगर नगर
रतलाम (म.प्र.)

शिक्षा के कार्यों, लक्ष्यों एवं मूल्यों की अवगति

डॉ. गिरीश कुमार शर्मा

शिक्षा के लक्ष्यों को समय-समय पर परिभाषित किया जाता रहा है। गांधीजी के शिक्षा के लक्ष्य आज भी प्रासंगिक हैं, क्योंकि वे आधुनिक जनतंत्रात्मक समाज के अनुरूप अहिंसात्मक एवं पोषणरहित सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था की ओर उन्मुख हैं। शिक्षा एक जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें आधारभूत ज्ञान के अतिरिक्त सामाजिक मूल्यों एवं मनोशारीरिक कौशलों का ज्ञान भी अपरिहार्य है।

शिक्षा के कार्यों एवं लक्ष्यों के संदर्भ में प्रक्रिया की दृष्टि से व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ व्यक्ति का सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रवृत्त होना भी आवश्यक है। इसके लिए उसके ज्ञान का आधार ठोस, कौशलों को सीखने के अवसर, मूल्यों की ग्राह्यता हेतु उचित वातावरण तथा राष्ट्रीय एकता एवं समग्रता हेतु विद्यार्थियों में भावना भरना आवश्यक है, जिससे वे महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण बन सकें।

वर्तमान पाठ्यक्रम विषयवस्तु से भरा है परन्तु कुछ चयनित विषय-वस्तु ही इसमें सम्मिलित की जाती है जबकि कुछ छिपी रह जाती है। जो चयनित हैं वे सूचनात्मक हैं तथा जो छिपे रह जाते हैं, उनमें विद्यार्थी स्वतंत्र सम्मति देने, मूल्यों के निर्धारण एवं मस्तिष्क समायोजन से वंचित रह सकते हैं। इस प्रकार की चयनित एवं उपेक्षित विषय-वस्तुओं पर दुबारा सोचने की आवश्यकता है कि क्या पाठ्यक्रम की परिणति मात्र अंक प्राप्त करने की है तथा अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन, प्रायोगिक अधिगम अनावश्यक है जिनकी उपेक्षा से शिक्षा मात्र औपचारिकता बन गई।

आवश्यकता इस बात की है कि हम और उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण करें जिनमें नये आयोजनों एवं पद्धतियों को स्थान दिया जाए। ऐसी स्थिति में केवल मात्र प्रमाण-पत्रों को ही जीवन यात्रा का अपरिहार्य अंग मानना कदापि व्यावहारिक नहीं, क्योंकि जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए ये पर्याप्त नहीं है। अतः विकास की प्रक्रिया में सहयोगी होने के लिए शिक्षा वह हो जो कि मुक्त करे। हमारी सांस्कृतिक विरासत से सार्वभौमिक प्रेम एवं भ्रातृत्व भाव प्राप्त हुए हैं और मुक्त करने की इस प्रक्रिया में वर्तमान संदर्भों में हम द्वेषरहित बनकर अन्य पूर्वापेक्षाओं से मुक्त हो सकें, ये विचार आज भी सत्य हैं।

शिक्षा के कार्यों एवं लक्ष्यों के संदर्भ में प्रक्रिया की दृष्टि से व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ व्यक्ति का सामाजिक परिवर्तन की ओर प्रवृत्त होना भी आवश्यक है। इसके लिए उसके ज्ञान का आधार ठोस, कौशलों को सीखने के अवसर, मूल्यों की ग्राह्यता हेतु उचित वातावरण तथा राष्ट्रीय एकता एवं समग्रता हेतु विद्यार्थियों में भावना भरना आवश्यक है, जिससे वे महत्त्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन के अभिकरण बन सकें।

शैक्षिक प्रभावशीलता में केवल तथ्यात्मक ज्ञान ही नहीं अपितु अभिवृत्तियों एवं कौशलों का विकास इस प्रकार होना चाहिए जिससे यह जीवनपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया सिद्ध हो सके। 1961 में पं. जवाहर लाल नेहरू ने राष्ट्रीय एकता हेतु सभी को समर्पित होने की जो प्रेरणा दी थी उसे आज के परिप्रेक्ष्य में पुनः प्रासंगिक करना आवश्यक है क्योंकि तभी राष्ट्र जाति एवं धर्म के पूर्वाग्रहों से मुक्त हो सकेगा।

1937 में डॉ. जाकिर हुसैन समिति ने तथा 1986 में राष्ट्रीय एकता समिति न धर्मनिरपेक्षता को राष्ट्रीयता का आधार-स्तम्भ माना तथा तदनुरूप इतिहास, नागरिक शास्त्र में वर्तमान घटनाओं की संगति विश्व के विभिन्न धर्मों के साथ बैठाकर तारतम्य बिठाने के प्रयास की अपेक्षा की थी। इसी प्रकार विज्ञान के अध्ययन से व्यक्तिगत एवं सामूहिक जीवन प्रक्रिया में सत्यता की तलाश को अपरिहार्य माना गया। शिक्षा एक बहुआयामी प्रक्रिया है, शिक्षा से राष्ट्रीय शिक्षक आयोग (1983-85) मुख्य चार लक्ष्यों की प्रत्याशा करता है—एक संगठित धर्मनिरपेक्ष भारत, एक आधुनिक राष्ट्र, उत्पादक व्यक्तियों की उपलब्धि तथा संवेदनशील एवं सर्वहिताय समाज।

संस्कृति केवल मात्र परम्पराओं, वेश-भूषाओं तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमों तक सीमित न रहकर मूल वास्तविकताओं की अवगति एवं पारस्परिक संबंधों की परिचायक होनी चाहिए। इस संदर्भ में वर्तमान शिक्षा बुरी तरह असफल रही है, क्योंकि व्यक्ति की पहचान के साथ-साथ शिक्षा व्यक्ति

की सामाजिक एवं राष्ट्रीय पहचान को प्रदर्शित कर सकने में असमर्थ रही है।

जीवन और शिक्षा संकीर्ण अर्थों में तथा विद्यालय एवं समुदाय विस्तृत अर्थों में संबद्ध हो सकें, शिक्षा की पुनर्रचना के संदर्भ में ऐसा बहुत महत्त्वपूर्ण है। इन अर्थों में विद्यालय सामुदायिक विद्यालय का रूप ले सकेगा तथा लैंगिक, जातिगत, धर्मगत, भाषागत जैसे छिछले स्तरों से समुदाय को ऊपर उठाने में समर्थ हो सकेगा–ऐसी आशा है।

हरियाणा तथा अन्य राज्यों में ऐसे सामुदायिक विद्यालयों का प्रयोग किया जा चुका है किन्तु इनकी सफलता बहुत कुछ कल्पनाशील प्रधान एवं शिक्षकों के दल पर निर्भर करेगा जो कि समर्पण भावना एवं पूर्ण अभिक्षमता से इसकी क्रियान्विति कर सके। ग्रामीण विद्यालयों में समुदाय की निकटता की विशेष समस्या नहीं है। शहरी विद्यालयों में इस बात की आवश्यकता है कि वे समुदाय के अर्थपूर्ण विकास कार्यों में संलग्न हों। इस आधार पर ही अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों की संलग्नता समुदाय से हो सकेगी तथा शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार हो सकेगा।

हमारी शिक्षा व्यवस्था में निजी संस्थाओं के महत्त्व की अनदेखी भी नहीं की जा सकती किन्तु उन्हें समाप्त करने के स्थान पर राजकीय शैक्षिक संस्थाओं की उपलब्धि एवं उनकी प्रभावशीलता को बढ़ाने की ओर प्रयास अपेक्षित है। नीपा द्वारा आयोजित राष्ट्रीय सम्मेलन 1989 में क्रियाशील स्वायत्तता तथा संस्था प्रधानों को अधिक अधिकार देने की बात कही गई है। यह सत्य भी है क्योंकि दायित्वों के क्षमतापूर्वक निर्वहन के लिए ऐसा आवश्यक है। इस प्रकार राजकीय संस्थाओं की गुणवत्ता का सुधार दूसरी निजी संस्थाओं पर पड़ना भी स्वाभाविक है।

सैद्धान्तिक रूप से शैक्षिक निर्णय प्रक्रिया में मध्यम वर्ग अन्य देशों की भांति भारत में भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यद्यपि 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस पर जोर दिया गया है, लेकिन व्यावहारिक रूप से इस ओर नीतिगत सुधार नहीं हो पाया है।

सामुदायिक विद्यालय, विद्यालय संगम, शिक्षा का व्यावसायिकरण आदि विषयों पर राष्ट्रीय शिक्षा नीति में जोर दिया गया है। ये निश्चित रूप से विद्यालयों की गुणवत्ता में वृद्धि करेंगे तथा पड़ौसी विद्यालयों का विकास प्रत्येक विद्यालय को सामुदायिक विद्यालय बना सकने की ओर प्रवृत्त होगा। अभी इस दिशा में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के दस्तावेज की अनुपालना में किया जाना शेष है।

प्रधानाचार्य : रा.उ.मा.विद्यालय करावली
सलूम्बर (उदयपुर-राजस्थान) - 313027

राष्ट्र चिन्तन

- भ्रष्टाचार देश के लिए एक बड़ी समस्या बन चुका है और आम जनता के विकास का पैसा बेईमान अफसरों की जेब में पहुंच जाता है। सरकार भ्रष्टाचार को जड़ से मिटाने के लिए प्रतिबद्ध है, लेकिन यह मुश्किल काम है। यह सिर्फ एक बड़े कदम उठा देने से खत्म नहीं होगा, बल्कि कई मोर्चों पर एक साथ काम करना होगा। हाल के महीनों में भ्रष्टाचार के कई मामले सामने आए हैं। कुछ मामलों में केन्द्र सरकार के नुमाइंदों और कई मामलों में राज्य सरकारों पर आरोप लगे हैं। भ्रष्टाचार कई रूप में मौजूद है। कभी आम आदमी के लिए बनी योजना का लाभ अफसरों की जेब में पहुंच जाता है, तो कहीं कुछ लोगों को लाभ पहुंचाया जाता है। लेकिन अब ऐसा नहीं होगा।

  डॉ. मनमोहन सिंह, *प्रधानमंत्री*

- देश के आर्थिक विकास के दौर में कोई भ्रष्टाचार से इन्कार नहीं कर सकता है। इसे एकदम पूरी तरह से रोकना मुश्किल है, लेकिन कानूनों में कुछ बदलाव से इसे काफी हद तक कम किया जा सकता है। आज के दौर में अगर कोई कहे कि देश में भ्रष्टाचार नहीं है तो मैं इस बात से कतई सहमत नहीं हो सकता हूं। भ्रष्टाचार से देश की आर्थिक व्यवस्था कमजोर होती है, इसे जड़ से मिटाने के लिए सामाजिक और नैतिकता के आधार पर भी प्रयास किए जाने चाहिए।

  एस.एच. कपाडिया
  मुख्य न्यायाधीश : सुप्रीम कोर्ट

- आजादी के बाद देश ने शानदार उपलब्धियां हासिल कीं, लेकिन गैर-बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था अभी खत्म नहीं हुई है। पिछड़े और दलित वर्ग के महापुरुषों ने समतामूलक समाज का जो सपना देखा था, वह अभी पूरा किया जाना बाकी है। लेकिन इन महापुरुषों ने सामाजिक व्यवस्था के शिकार लोगों का जीवन स्तर ऊपर उठाने के लिए जो कार्य किए हैं, उसके लिए इन महापुरुषों को नमन किया जाना चाहिए।

  मायावती, *मुख्यमंत्री : उत्तर प्रदेश*

शैक्षणिक अनुशासन, माहौल और चिन्तन

जनार्दन शर्मा

एक पुरानी कहावत है धोड़ा अड़ा क्यों? पान सड़ा क्यों? जवाब–दोंनों को फेरा (पलटा) नहीं था।

रूडयार्ड किपलिंग ने जीवन में उन्नति या किसी विद्या को सीखने में छः सहायक शब्द बताये है–क्या, क्यों, कैसे, कहाँ, कब, किसे? एक प्रतिभाशाली व कल्पनाशील में अन्तर बताया है–पहला किसी वस्तु को देखकर कहता है–यह यहाँ क्यों हैं? बाद वाला कहता है–यह यहाँ क्यों नहीं हैं?

एक अंग्रेजी कहावत है–कुशलता का सूत्र है–विचारणा, किन्तु होता यह है कि कुछ लोग ही विचार करते हैं, कुछ विचार करने का विचार करते हैं, बाकी विचार करते ही नहीं। यही समस्याओं की जड़ है, लोग काम के पहले उसके परिणाम पर विचार नहीं करते। मानव संसाधन मंत्रालय 8 से 14 साल के बच्चों को 8 वीं और अब दसवीं तक अनिवार्य व निःशुल्क शिक्षा तथा गांवों में नवोदय और कॉन्वेन्ट जैसे स्कूल खोलने की बात कहता है, किन्तु उचित चिन्तन का माहौल, शिक्षक व शिक्षार्थी के संबंध व अनुशासन पर विचार नहीं होने से सबको चिन्ता है। गत दिनों राज.मा.शिक्षा बोर्ड के शीर्ष अधिकारी से चर्चा में हमारे यह पूछने पर कि सरकारी स्कूल का शिक्षक अपने बच्चे को निजी स्कूल में क्यों पढाना पसन्द करता है, उनका सटीक उत्तर था–प्राइवेट में वेतन व नौकरी पर कड़ा नियंत्रण, सरकारी में इस (माहौल व कडाई) का अभाव।

बच्चे अपने मित्र की कार या बाइक का मॉडल व रंग देखकर वाहन खरीदते हैं, किन्तु विचारशील–वाहन की कीमत, वह कैसी व कितनी (अवधि) चलती है, इस पर विचार करते हैं। इसीलिये कहते हैं बच्चा बुद्धिमान है तो जरूरी नहीं वह विचारशील है, वस्तुतः बुद्धिमान की विचार शक्ति प्रायः कमजोर देखी जाती है–और वे त्वरित उत्तर देते हैं, जबकि विचारशील की गहरी पेठ। संयुक्त राष्ट्र संघ के पूर्व महासचिव कोफी अन्नान ने विद्यार्थी काल का जिक्र करते हुये बताया कि कक्षा में एक दिन शिक्षक ने श्याम-पट पर चाक से सफेद आयताकार रेखायें खींचकर मध्य में एक बिन्दु लगाकर पूछा यह क्या है? सबने कहा–यह बिन्दु है, जबकि उन्होंने कहा, सफेद आयताकार रेखा मध्य एक बिन्दु। यह कम्प्रिहेन्सिव निरीक्षण व चिन्तन का प्रतीक है।

हाल ही में बंगलोर स्थित एक बड़ी कंपनी को तीन हजार प्रोफेशनल (कुशल) कर्मचारियों की जरूरत थी जो दस माह में पूरी करनी थी–यानी एक माह में तीन सौ व एक दिन में दस। प्रबंधकों ने सोचा यह बड़ा सरल काम है, किन्तु बाद में पाया कि अभ्यार्थियों में शैक्षणिक योग्यता थी, पर विचार, कल्पनाशीलता, देश दुनिया का ज्ञान, वांछित व्यक्तित्व वाले एक प्रतिशत ही आ सके। चिन्तन व माहौल का अभाव।

चिन्तन शक्ति व माहौल का दायित्व सरकार के साथ शिक्षकों व अभिभावकों का भी है। विद्यार्थी काल में प्रधानमंत्री होते तो क्या करते? रेल यात्रा, देशाटन व मेले पर विश्लेषणात्मक निबंध लेखन से विचार बनते हैं। पश्चिमी शिक्षाविदों का कहना है लेखन का अभ्यास बुद्धि को चिन्तन परक बनाता है, लिखना व पढ़ने की आदत दोंनों परम आवश्यक है।

वैज्ञानिक थॉमस एडीसन से पहले लोग बिना वल्ब के लेम्प से काम चलाते थे, केलक्यूलेटर के पहले का गजपेसिज से हिसाब करते व कम्प्यूटर से पहले टाइप राइटर से। चिन्तन से आविष्कार हुये–आवश्यकता आविष्कार की जननी है।

मेनेजमेन्ट गुरु ए.रघुनाथन ने माहौल को मनोरंजक ढ़ंग से समझाया है–हाल में प्रदर्शित 'रेडी' फिल्म देखने व मुम्बई के चेम्बूर में एकल थियेटर में गये। फिल्म मनोरजंक थी। दर्शक (प्रायः युवा) प्रेम (सलमान) के अविश्वसनीय कर्त्तव्यों को देखकर सीटी बजाते व उत्साह का प्रदर्शन करते थे, वही फिल्म उन्होंने दो दिन बाद भोपाल में एक मल्टीफ्लेक्स में देखी–उन्होंने देखा–न तो सीटी और न तालियां-बाहर निकलकर उन्होंने युवादर्शकों ने विचार कर बताया कि उन्होंने फिल्म का खूब मजा व मनोरंजन किया किन्तु सीटी का शोर इसलिये नहीं किया कि ऐसे अप-मार्केट-थियेटर में आने वाले वर्ग के लोग पता नहीं क्या सोचें। रघुनाथन के विचार में माहौल व चिन्तन ने अनुशासन बनाये रखा। क्या हमारी सरकारी स्कूलों में शिक्षकों व विद्यार्थियों की निर्धारित ड्रेस-टाइ-एटीकेट एवं चिन्तन के माहौल से (मेडिकल कॉलेजों में डाक्टरों, इंजीनियरों एवं आई.ए.एस. आर.ए.एस. प्रशिक्षणार्थियों की तरह) स्कूलों में आरम्भ से ही परिवर्तन का वातावरण निर्माण नहीं, किया जा सकता? सरकार को रक्षा-व्यय घटाकर शिक्षा बजट बढाना होगा।

अन्ना हजारे–चिन्तन की कसौटी पर गांधीवादी चिन्तन अन्ना हजारे को भ्रष्टाचार मुक्त भारत अभियान में जन्तर-मन्तर पर बुद्धिजीवी नागरिक समाज का संयमित आचरण से अलंकृत समर्थन ने सारे देश में युवा शक्ति को उनके साथ खडा कर दिया और सरकार भी जन लोकपाल बिल बनाने को झुक गई, उसी अन्ना हजारे ने राजघाट पर भी गाँधी की अहिंसा का सहारा लेकर बाबा रामदेव के समर्थकों पर लाठी प्रहार के विरोध में अनशन कर भारी जन समर्थन जुटाया। बाबा रामदेव में वांछित चिन्तन की कमीबेशी पाई। बिना विचारे जो करे सो पाछे पछिताय

-सत्य सदन, पुष्कर

पूर्व बुनियादी शिक्षा : धुंधली प्राथमिकताएं

दिनेश प्रताप सिंह 'चित्रेश'

सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत प्रत्येक न्याय पंचायत के एक विद्यालय में 'स्कूल रेडीनेस प्रोग्राम' के नाम से ढाई से पाँच साल के बच्चों के लिए केन्द्रों का संचालन हो रहा है। इस हेतु चयनित विद्यालयों को खेल के सामान, झूले, निःशुल्क पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई गई है। इस शिक्षा के प्रति अभिभावकों और शिक्षाविदों की रुचि निरंतर बढ़ रही है। यह शुभ लक्षण है। किन्तु वंचित वर्ग के बच्चों को ध्यान में रखकर अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ होना बाकी है।

इधर जब से 'शिक्षा का अधिकार-2009' अधिनियम को माननीय राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त हुई है और 1 अप्रैल 2010 से यह कानून पूरे देश में लागू हो गया है, तो देश के बौद्धिक संवर्ग के बीच पढ़ाई-लिखाई को लेकर बहस-मुबाहिया और चिंतन का ग्राफ भी ऊँचा हुआ है। इसके साथ-साथ सरकारी स्तर पर शिक्षा को युग सापेक्ष, गुणवत्तापूर्ण और व्यवसायोन्मुख बनाने की उद्घोषणाएं भी खूब हो रही हैं। मगर यह कितनी विडम्बनापूर्ण बात है कि जो शिक्षा की आधारशिला है यानी पूर्व प्राथमिक शिक्षा, वह वर्तमान शैक्षिक परिदृश्य में सिरे से नदारद है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा कोई नई अवधारणा नहीं है। ईसा पूर्व चौथी सदी के महान् दार्शनिक प्लेटो की 'शिक्षा योजना' में 3 से 6 वर्ष की आयु सीमा को बालक के शारीरिक विकास, देशभक्ति, नैतिक मूल्यों की स्थापना, कल्पनाशीलता के विकास और संगीत-साधना के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है। सत्रहवीं सदी के शिक्षाशास्त्री को मेनियस के अनुसार, 'जन्म से 6 वर्ष की आयु के मध्य सभी कलाओं और विद्याओं की जड़ें आरम्भ होती हैं।' सन् 1945 में जब महात्मा गांधी ने 'समग्र जीवन शिक्षा योजना' प्रस्तुत की, तो उसमें 'पूर्व बुनियादी शिक्षा' की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए गांधीजी ने कहा था-''यह (गर्भकाल से 6 वर्ष) मनुष्य की सारी शिक्षा की नींव है। इसी के द्वारा बालक में चरित्र के स्थायी संस्कार पड़ते हैं।''

आरम्भ में गांधीजी ने इसका दायित्व मां-बाप यानी घर-परिवार पर डाला था। यह राज्य का विषय नहीं था। किन्तु गांधीजी के सहयोगी विनोबा भावे ने समाज की दशा-दिशा को केन्द्र में रखकर स्पष्ट किया था–''पूर्व बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य मुख्य तौर पर बच्चे में उत्तम संस्कार और आदतों की नींव डालना है। परन्तु आज के समाज की वह स्थिति नहीं है और न माँ-बाप इतने शिक्षित और उत्तरदायी हैं। घर-परिवार का वातावरण भी इतना आदर्श व सुसंस्कृत नहीं है। अतः अच्छा वातावरण प्रदान करने के लिए पूर्व प्राथमिक शालाओं का होना आवश्यक है।''

वैश्विक धरातल पर दृष्टिपात करने पर हम पाते हैं कि फ्रेंच पादरी जोहान फ्रेडरिक ओवरलिन (1740-1826) वह पहला व्यक्ति था, जिसने अपनी सहायिका लुई शेपला के साथ मिलकर विश्व की पहली शिशुशाला फ्रांस के असलेल नामक स्थान पर खोली। यह छह साल से कम आयु के बच्चों की खेल व आनन्द पर आधारित संस्था थी। आगे चलकर किंडर गार्टन शिक्षा पद्धति के जर्मन शिक्षा शास्त्री फोवेल ने 1838 में ब्लेकन्वर्ग में एक शिशु उद्यान कायम किया। यह छोटे बच्चों के सामूहिक क्रिया-कलाप, प्राकृतिक सौन्दर्य अवलोकन, खेल और स्वतंत्र व्यक्तित्व विकास की शाला थी। इंग्लैण्ड में पूर्व प्राथमिक शाला की शुरूआत उद्योगपति एवं समाज सुधारक रॉबर्ट ओवन (1771-1858) ने की थी। उसका प्रेरणा-वाक्य था–''बच्चे पुस्तकों से तंग किए जाने के लिए नहीं होते। उन्हें आस-पास की वस्तुओं व गुणों को सिखाया जाना चाहिए तथा एक दूसरे के बीच प्रसन्नता बांटी जानी चाहिए।''

इंग्लैण्ड में मार्गरेट मैकमिलन और रेचेल मैकमिलन नामक दो बहनों ने पूर्व बुनियादी शिक्षा के लिए बड़ा प्रयास किया। उन्होंने खुली और स्वच्छ वायु में नर्सरी स्कूलों के लिए आन्दोलन चलाया तथा लंदन की गंदी बस्तियों में नर्सरी शालाएं खोलीं। जनाकांक्षा के फलस्वरूप 1918 में इंग्लैंड में 'फिशर एक्ट' पास हुआ, जिसके तहत 2 से 5 वर्ष के बच्चों का नर्सरी में जाना आवश्यक कर दिया गया।

इसी क्रम में सन् 1885 में ईसाई मिशनरी संगठनों ने लखनऊ और पूना के आस–पास कुछेक पूर्व प्राथमिक शालाओं की स्थापना की। सन् 1920 से 30 के मध्य थियोसोफिकल सोसायटी द्वारा दक्षिण भारत में इस दिशा में कुछ कार्य किया गया था। 1926 में भावनगर (गुजरात) में गिजू भाई बधेका ने मोंटेसरी शिक्षण पद्धति से प्रेरणा लेकर 'प्रकृति के अवलोकन से उत्पन्न जिज्ञासाओं के समाधान में सहयोग' पर आधारित कुछ शिशुशालाओं की स्थापना की थी। ताराबाई भोदक, रूक्मिणी देवी, जी. एस. अरूण्डेल जैसे व्यक्तियों के अलावा बालकनजी बारी (दिल्ली), ऑल इंडिया वूमेंस कांफेंस, इंडियन काउंसिल फॉर चाइल्ड वेलफेयर जैसी कई संस्थाओं ने भी अपने-अपने प्रभाव क्षेत्रों में पूर्व बुनियादी शिक्षा को बढ़ावा दिया। सन् 1944 में आई सार्जेन्ट कमेटी की रिपोर्ट का आधुनिक भारत की शिक्षा के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें पिछड़े क्षेत्र के बालकों के लिए पूर्व बुनियादी शिक्षा पर जोर दिया गया है।

यह शिक्षा मूलतः ढाई से छह साल आयुवर्ग के बच्चों के लिए है। यह बचपन का वह कालखण्ड है, जिसमें शिशु अपने जीवन की सम्पूर्ण बृद्धि संभाव्य की दिशा ग्रहण कर चुका होता है। मानसिक विकास की दो अवस्थाएं 'संवेदनात्मक काल' (जन्म से 2 वर्ष) तथा 'प्री ऑपरेशनल काल' (2 से 7 वर्ष) इसमें समाहित है। शिकागो विश्वविद्यालय के शिक्षाशास्त्री बैंजामिन ने अपने शोध अध्ययन में बताया है कि चार वर्ष की आयु तक बच्चा अपनी बुद्धि संभाव्य का इतना विकास कर लेता है, जितना कि आगामी तेरह वर्ष में होने को है। छह वर्ष की आयु तक पहुँचने पर वह लगभग सत्रह वर्ष तक प्राप्त की जा सकने वाली बुद्धि का दो तिहाई भाग प्राप्त कर चुका होता है। चार से छह वर्ष की आयु के बीच बुद्धि परिवर्तन संभव है, पर अत्यन्त कठिन। आगे आयु बढ़ने पर यह परिवर्तन प्रायः असंभव हो जाता है।

निश्चय ही जन्म से छह साल का कालखण्ड अत्यंत संवेदनशील है। प्रश्न यह है कि क्या इसके उचित संवर्द्धन और प्रबंधन के लिए सरकार के पास पूर्व प्राथमिक शिक्षा सम्बन्धी कोई स्पष्ट व पुख्ता शिक्षा-नीति है? बहुप्रतीक्षित 'शिक्षा का अधिकार-2009' अधिनियम में इसकी जिम्मेदारी सरकार ने नहीं ली है। जबकि मूल्यपरक और न्यायोचित गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पर काफी बल दिया गया है। किन्तु यह शून्य में नहीं हो सकता। इसके लिए भविष्य के बौद्धिक और मानवीय संसाधन का समुचित प्रबंधन आवश्यक है। केबल संस्कृति के इस दौर में अपसंस्कृति के झोकों से परिवार–समाज सदाचार और नैतिकता के नाम पर खोखले हो चुके हैं। बच्चों को देने के लिए उनके पास क्या बचा है? इस उजाड़ में जब अश्लीलता, हिंसा और अमर्यादित जीवन-दर्शन के बीच बच्चा पल रहा है, तो उसके बचपन को स्वस्थ दिशा में ले जाने की जिम्मेदारी किसकी बनती है?

गांधीजी ने इस जिम्मेदारी को पहचाना था। 'समग्र जीवन शिक्षा योजना' में उन्होंने बच्चे के गर्भकाल को पूर्व बुनियादी शिक्षा का प्रथम चरण बताया है। इसलिए गर्भावस्था में माँ के लिए प्रसन्नतापूर्ण पारिवारिक माहौल, सत्साहित्य के पठन और सात्विक भोजन पर उन्होंने जोर दिया था। जन्म से ढाई साल के बीच बच्चा घर में परिजनों के साथ प्रेम व आत्मीयता के माहौल में समाज स्वीकृत व्यवहार एवं अच्छी आदतों का विकास करेगा। इसके पश्चात् बच्चा शिशुशाला में प्रवेश करेगा। इस आयुवर्ग (2½ वर्ष से 6 वर्ष) के प्रारंभिक अवस्था में बच्चे का पेशीय नियंत्रण और आपसी समन्वय पूर्ण नहीं होता। वह छोटी क्रियाएं कर लेता है। अपना खेल स्वयं खेलना चाहता है। अलग-थलग रहने और तोड़फोड़ की प्रवृत्ति भी होती है। इस उम्र के बच्चों को अगर समूह में रखकर छोटी-छोटी गतिविधियों और खेलों द्वारा पेशीय नियंत्रण, भाषा विकास, रचनात्मकताओं और अभिक्षमताओं के विकास के स्वतंत्र अवसर उपलब्ध कराए जाएं, तो उनके अन्दर छिपी सृजनात्मकता को नई दिशा, गति और प्रोत्साहन तो मिलता ही है, उनमें सामंजस्य और सामुदायिकता बोध का प्रस्फुटन भी होने लगता है।

गांधीजी ने शिशुशाला के बच्चों के लिए खेलकूद, नृत्य, व्यायाम, सामूहिक गान, खिलौनों, देशी सामान-कंकड़, मिट्टी, गत्ता, कागज, रंग आदि से रचनात्मकता, अनुशासन और सामूहिकता के विकास पर बल दिया है। इसके अलावा उन्होंने समवाय शिक्षण-मेला, त्योहार, संगीत, चित्रकारी, बागवानी, कहानी आदि के माध्यम से पर्यावर्णीय व कला चेतना तथा भाषा विकास का प्रावधान किया था। गांधीजी की प्रेरणा से बिहार, राजस्थान, बंगाल, गुजरात, वर्धा, संयुक्त प्रांत में कई शिशुशालाएं खुली थीं। किन्तु तत्कालीन उथल-पुथल भरे राजनीतिक माहौल में यह कार्य आन्दोलन का रूप नहीं ग्रहण कर सका था।

आजादी के बाद भी इस दिशा में समय-समय पर प्रयास होते रहे। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में सुदूर और अतिपिछड़े क्षेत्रों में बालवाड़ियों का गठन किया गया था। सन् 1960 में शिक्षा मंत्रालय द्वारा गठित 'चिल्ड्रेन मानिटरिंग कमेटी' की रिपोर्ट में पूर्व प्राथमिकशालाओं की स्थापना पर बल दिया गया था। 'कोठारी शिक्षा आयोग' के प्रो. डी. एस. कोठारी ने ग्रामीण क्षेत्रों और शहरी मलिन बस्तियों के निर्धन परिवार के बच्चों के लिए पूर्व बुनियादी शिक्षा को एक आवश्यकता के रूप में रेखांकित किया है। आयोग की रिपोर्ट में बच्चों में स्वस्थ आदतों, सामाजिक दृष्टिकोण, संवेदनशीलता, परस्पर सामंजस्य, बौद्धिक जिज्ञासाओं और रचनात्मकता के विकास के दृष्टिगत बाल सेविकाओं के प्रशिक्षण पर भी महत्त्वपूर्ण सुझाव हैं।

सम्प्रति भारत सरकार की महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा संचालित 'समन्वित बाल विकास परियोजना' के स्तर पर आंगन बाड़ी केन्द्रों के रूप में पूर्व बुनियादी शालाएं चल रही हैं। गांधीजी, भारिया मोंटेसरी फोवेल, मैकमिलन बहनें सभी ने बाल सेविका में माँ सदृश्य ममता व स्नेह, सामाजिक कार्य में रुचि, समर्पण, नम्रतापूर्ण व्यवहार और सृजनात्मक गुणों का होना आवश्यक माना है। किन्तु व्यावहारिक धरातल पर आंगनवाड़ी कार्यकत्री व सहायिका में यह गुण दृष्टिगोचर नहीं होते। मूलतः पूर्व बुनियादी शिक्षा का यह पक्ष जितना संवेदनशील है, उस दृष्टि से व्यवस्था अत्यंत निम्न स्तर की है। आंगनवाड़ी कार्यकत्री या सहायिका में ऐसा भाव कतई नहीं दिखता कि वे किसी महत्त्वपूर्ण कार्य में लगी हैं। केन्द्र की कार्यकत्री जिसका कार्य गर्भवती महिला को स्वस्थ, स्वच्छ एवं उल्लासमय जीवन की अभिप्रेरणा और ढाई से छह साल के बच्चों को स्नेह, सुरक्षा और रोचक माहौल में आनन्ददायी क्रियाओं के साथ व्यक्तित्व विकास का अवसर देना होता है, मूलतः कटौतीपूर्ण ढंग से पुष्टाहार वितरण और तीन घंटे की गुस्सैल मास्टरनी की सीमित भूमिका का निर्वहन करती दिखती हैं। प्रशिक्षण शिविरों में यह सेविकाएं बच्चों के लिए आनन्ददायी गतिविधियां सीखने या सुरक्षित प्रसव सम्बन्धी जानकारी लेने के मामले में उदासीन रहती है। संभवतः इसके पीछे सेविकाओं का नरेगा की मजदूरी से भी अल्प मानदेय एक कारक होगा।

सम्पन्न परिवार के बच्चों के लिए प्ले वे मैथड स्कूल और नर्सरियों की भरमार है। किन्तु आर्थिक रूप से पिछड़े संवर्ग के लाखों बच्चे पूर्व प्राथमिक शिक्षा की सुविधा से वंचित हैं। क्योंकि अधिकतर आंगनवाड़ी केन्द्र कागज पर संचालित हैं। सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत प्रत्येक न्याय पंचायत के एक विद्यालय में 'स्कूल रेडीनेस प्रोग्राम' के नाम से ढाई से पाँच साल के बच्चों के लिए केन्द्रों का संचालन हो रहा है। इस हेतु चयनित विद्यालयों को खेल के सामान, झूले, निःशुल्क पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराई गई है। इस शिक्षा के प्रति अभिभावकों और शिक्षाविदों की रुचि निरंतर बढ़ रही है। यह शुभ लक्षण है। किन्तु वंचित वर्ग के बच्चों को ध्यान में रखकर अभी इस क्षेत्र में बहुत कुछ होना बाकी है।

पो.आ. आसापारा, गोसाईगंज
228119, सुलतानपुर (उ.प्र.)

महात्मा गांधी ने समझाया सुसंस्कारों का महत्त्व

उन दिनों गांधीजी चंपारण में थे। सुबह नियम से वे चरखा कातते थे और अपने सहयोगियों से आवश्यक चर्चा करते थे। एक दिन वे अपनी कुटिया के बाहर बैठे थे। सुबह का समय था उन्होंने अपने एक सहयोगी से चरखा माँगकर सूत कातना शुरू किया। कुटिया के सामने खुला स्थान था, जहाँ बच्चे खेलते थे। उस समय भी वहाँ बच्चे खेल रहे थे। अचानक दो बच्चे खेलते-खेलते किसी बात पर झगड़ पड़े। धीरे-धीरे दोनों के मध्य विवाद इतना बढ़ा कि आपस में गालियां देने लगे। छोटे बच्चों के मुंह से अपशब्द सुनकर गांधीजी को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने तत्काल दोनों बच्चों के माता-पिता को बुलवाया। उनके आते ही गांधीजी ने उन्हें डांटना शुरू कर दिया। कुछ देर तक वे सुनते रहे, फिर उनमें से एक बच्चे के पिता ने कहा—बापू, हमारी गलती तो बताइए। गांधीजी ने कहा—तुम दोनों के बच्चे यहाँ खेल रहे थे। उनमें झगड़ा हुआ और वे एक दूसरे को गालियां देने लगे। उस व्यक्ति ने कहा—इसके लिए आपने हमें क्यों बुलाया? दोनों बच्चों को बुलाकर डांट देते। आपको उन्हें डांटने का पूरा अधिकार है। गांधीजी ने गंभीरता से कहा—मैं उन्हें डांट सकता था, किन्तु डांटता तो तब जब वे दोषी होते। ये गालियां तो उन्होंने तुम लोगों से सीखी होंगी। उनकी बात सुनते ही दोनों बच्चों के माता-पिता के सिर लज्जा से झुक गए और उन्होंने गांधीजी से क्षमा माँगी। बच्चे कच्ची मिट्टी के समान होते हैं। उन्हें संस्कारों के जिस स्वरूप में ढाला जाता है, वे ढल जाते हैं। अतः उन्हें सदैव सुसंस्कार देने चाहिए।

कसौटी

जयनारायण गौड़

फाइनल परीक्षा के एक पेपर में निर्धारित विषय पर शोध-निबंध लिखना था तथा यह निबंध, परीक्षा केन्द्र पर नहीं, बल्कि घर पर तैयार करके, निर्धारित अवधि में परीक्षक को सौंपना था। निबंध का विषय दिया गया 'दर्शनशास्त्र की विसंगतियाँ'। इस अनपेक्षित पर चुनौतीपूर्ण विषय पर अमिताभ ने प्रमुख दार्शनिकों के सिद्धान्तों का नये सिरे से अध्ययन किया और उसकी पैनी दृष्टि से उनके अनेक विरोधाभास छिप न सके।

उनके विरोध के बावजूद, बी.ए. के बाद फिलॉसफी में ही एम.ए. करने के अमिताभ के फैसले से पिताजी खफा थे। वे इसे व्यर्थ का विषय इसलिए मानते थे क्योंकि अध्यापकी के अलावा न तो इसमें किसी नौकरी की गुंजाइश और न ही जीवन की वास्तविक और काल्पनिक गुत्थियों में उलझे हुए विषय का कोई आकर्षण। उन्होंने एक दिन अमिताभ से यह भी कहा था कि तुम अपनी जिंदगी बरबाद कर रहे हो। दर्शनशास्त्र तो हल न हो सकने वाली समस्याओं का समझ में नहीं आने वाले समाधान ही बताता है। बाद में अनेक बार प्रेम से भी समझाया पर अमिताभ की समझ में नहीं आया। अब तक के अध्ययन से वह जान चुका था कि फिलॉसफी से बेहतर कोई विषय है ही नहीं। आखिर में हुआ यही कि पिता के तर्क, दबाव और मनाने जैसे सब हथियार फेल हो गए पुत्र नहीं माना। अमिताभ का रूचि के अलावा इसका एक कारण दर्शनशास्त्र विभाग के विद्वान विभागाध्यक्ष प्रो. हरगोविन्द पंत भी थे जिन्हें वह अपना आदर्श भी मानता था।

उसका अध्ययन ठीक ठाक चल रहा था। फाइनल परीक्षा के एक पेपर में निर्धारित विषय पर शोध-निबंध लिखना था तथा यह निबंध, परीक्षा केन्द्र पर नहीं, बल्कि घर पर तैयार करके, निर्धारित अवधि में परीक्षक को सौंपना था। निबंध का विषय दिया गया 'दर्शनशास्त्र की विसंगतियाँ'। इस अनपेक्षित पर चुनौतीपूर्ण विषय पर अमिताभ ने प्रमुख दार्शनिकों के सिद्धान्तों का नये सिरे से अध्ययन किया और उसकी पैनी दृष्टि से उनके अनेक विरोधाभास छिप न सके। इम्मैनुअल कांट की यह सोच इसे अतार्किक लगी कि वस्तुओं का तात्विक स्वरूप नितांत अज्ञेय है। क्योंकि यदि ऐसा है तो उस अज्ञेय के अध्ययन का औचित्य या आवश्यकता ही क्या है। हीगल का यह विचार भी अजीब लगा कि परम सत्ता तो प्रत्यय स्वरूप है तथा उसे केवल द्वन्द्वात्मक प्रणाली से ही समझा जा सकता हैं क्योंकि भारतीय दर्शन और परम्परा के अनुसार तो परमसत्ता वाद-विवाद का नहीं वरन् आस्था का विषय है। डेकार्टे, स्पिनोजा और अन्य कुछ दार्शनिकों की मीमांसाओं में भी उसे कुछ और ऐसे ही विरोधाभास मिले और यह भी लगा कि सत्य की खोज में लगा यह विषय अब भी किसी ठोस या स्वीकार्य नतीजे पर नहीं पहुँच पाया है। दर्शन शास्त्र की, पिता द्वारा मुखर आलोचना भी उसे याद हो आई। अंततः उसने अपना निबंध तैयार कर विभाग को सौंप दिया। अन्य छात्रों ने भी यही किया।

लगभग एक महिने बाद एक दिन ऐसी अनहोनी हुई कि अमिताभ हतप्रभ। प्रो. पंत ने उसे अपने दफ्तर में बुलाकर कहा कि 'देखो, मैंने सारे शोधपत्र देख लिये हैं। इनमें तुम्हारे और बृजेश के शोधपत्र सर्वोत्तम हैं पर मुश्किल यह है कि किसे अव्वल मानूं और किसे दोयम, क्योंकि दोनों पत्र अपनी श्रेष्ठता में लगभग बराबर हैं। तुम्हें बृजेश का निबंध मैं देता हूँ। इसे ध्यान से पढ़कर मुझे बताओ कैसा है।'

पारदर्शिता की भी सीमाएँ होती हैं और एक परीक्षक द्वारा छात्र से ही, उसकी परीक्षा के पेपर का स्व-मूल्यांकन ही नहीं, उसके प्रतिद्वंदी का भी मूल्यांकन करने को कहना, परीक्षा में आवश्यक गोपनीयता के विरूद्ध था, इसलिए अमिताभ ने मना कर दिया। पर गुरुदेव न माने और उन्होंने आदेश किया कि उसे यह करना ही है। अब वह अधिक विरोध नहीं कर सका अतः बाद में घर पर उसने बृजेश की रचना को दो बार पढ़ा और जो पत्र उसने प्रो. साहिब को भेजा उसका सार था कि यद्यपि स्वयं उसकी रचना भी बहुत अच्छी है, पर बृजेश का शोध-पत्र उससे कुछ बेहतर ही है।

एम.ए. के परिणामों में वह और बृजेश दोनों ही प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण हुए थे और अंक तालिका मिलने पर आनंदित करने वाली बात यह भी उजागर हुई कि शोध पत्र वाले पेपर में अमिताभ को सर्वाधिक अंक मिले थे और उसी ने कक्षा में टॉप भी किया था। अब पी.एच.डी. हेतु एडमिशन लेने के लिए वह जब प्रो. पंत से पुनः मिला तो उन्होंने जासूसी मुद्रा में मुस्कुराते हुए कहा 'क्या तुम जानते हो, इस शोध पत्र वाले पेपर में मैंने तुम्हारी एक नहीं, दो-दो परीक्षाएँ ली थीं। भ्रमित, चकित जब उसने पूछा 'सर, वो कैसे?' तो वे बोले 'मैं तो पहले ही इस पेपर में, बृजेश से ज्यादा नम्बर तुम्हें दे चुका था, क्योंकि तुम्हारा निबन्ध वास्तव में बेहतर है। इन दार्शनिकों के सिद्धांतों की विसंगतियों का तुमने जो विश्लेषण किया है वह अकाट्य है और उससे तुम्हारा गहन अध्ययन सिद्ध होता है। यही नहीं, इनमें से कुछ असंगतियों के समाधान हेतु दर्शन सिद्धांतों में जो परिवर्तन तुमने सुझाएं हैं वे तो शायद विख्यात दार्शनिक बन जाने के तुम्हारे सफर की शुरूआत भी है।'

कुछ क्षण रुककर, वे पुनः बोले- तुमसे और बृजेश से राय मांगना तो तुम लोगों का दूसरा इम्तिहान था। तुम इस कसौटी में भी बेहतर निकले। उसे भी मैंने तुम्हारा निबंध दिया था। उसने तो जवाब यह भेजा कि उसका निबंध तुमसे अधिक अच्छा है। लेकिन तुमने भी यही कहा। इस परीक्षा में भी उसके अहं को तुम्हारी विनम्रता ने मात दे दी। अमिताभ अब क्या कहे। उसके अवरूद्ध कंठ ने शब्द तो रोक लिए पर आंसुओं को आँखें नहीं रोक सकीं।

अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण द्वारा उद्घोषित

अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह

(26 सितंबर 2011 से 2 अक्टूबर 2011)

अणुव्रत आंदोलन न सम्प्रदाय है न कोई परम्परा। असाम्प्रदायिक और शाश्वत धर्म है अणुव्रत। इसके परिपार्श्व में चरित्र विकास, नैतिक और अहिंसक मूल्यों की पुर्नस्थापना का अभियान विगत 60 वर्षों से गतिशील है। अणुव्रत मानव जाति के विकास के लिए पथ दर्शन है जिसकी शाश्वत अपेक्षा है। अणुव्रत कार्यक्रमों की शृंखला में इस वर्ष अणुव्रत उद्बोधन सप्ताह का क्रम निम्नानुसार निर्धारित हुआ है

- **26 सितंबर, 2011 सोमवार : पर्यावरण शुद्धि दिवस**
  शुद्ध पर्यावरण स्वस्थ जीवन के लिए आवश्यक है। पर्यावरण चेतना को जन-जन तक पहुँचाया जाये यही इस दिवस का उद्देश्य है। इस दिन स्थान-स्थान पर यात्राएं, भाषण, चित्रकला, नाटक, गायन प्रतियोगिताएं, प्रदर्शनियां आयोजित की जाएं।
- **27 सितंबर, 2011 मंगलवार : जीवन विज्ञान दिवस**
  शिक्षा का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक रूप जीवन में निखरे। शिक्षा को मूल्यपरक बनाने के लिए जीवन विज्ञान विकल्प है। इस दिन शिक्षण संस्थानों में विद्यार्थियों, शिक्षक-शिक्षिकाओं को जीवन-विज्ञान की जानकारी दी जाये एवं प्रयोग भी करवाये जायें।
- **28 सितंबर, 2011 बुधवार : अणुव्रत प्रेरणा दिवस**
  जन-जन को अणुव्रत आचार-संहिता, वर्गीय आचार-संहिता की जानकारी दी जाए। अणुव्रती बनो अभियान संचालित हो। अणुव्रत समिति का गठन किया जाए। 'अणुव्रत' आधारित भाषण, निबन्ध, चित्रकला प्रतियोगिताएं आयोजित की जाएं।
- **29 सितंबर, 2011 वृहस्पतिवार : सांप्रदायिक सौहार्द दिवस**
  दुनिया में संप्रदाय सदा रहे हैं, आगे भी रहेंगे। आवश्यकता है कि संप्रदाय सापेक्षता को समझा जाए तथा इससे जुड़ी संकीर्णता, द्वेष, दुर्भावना आदि को दूर किया जाए। विभिन्न संप्रदाय के प्रमुखों तथा अनुयायियों के साथ मिलकर संप्रदायों की सापेक्षता पर विचार किया जाए एवं सांप्रदायिक सौहार्द का वातावरण बनाया जाए। इस दिवस पर सर्वधर्म सम्मेलन, गोष्ठियां, सेमिनार आदि आयोजित हों।
- **30 सितंबर, 2011 शुक्रवार : नशा मुक्ति दिवस**
  नशा नाश का द्वार है। आज नशे के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। सभी लोगों को नशे के दोषों, हानियों की जानकारी दी जाये तथा नशामुक्ति का संकल्प कराया जाए। इस कार्यक्रम में चिकित्सकों, नशामुक्ति से संबंधित सरकारी विभागों तथा स्वयंसेवी संस्थाओं का सहयोग भी लिया जाए। नुक्कड़-नाटक, गीत, प्रदर्शनी, भाषण आदि के विशेष कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।
- **01 अक्टूबर, 2011 शनिवार : अनुशासन दिवस**
  अनुशासन व्यक्ति और समाज का मूलाधार है। अनुशासन के अभाव में जीवन बिखर जाता है। इस दिन अनुशासन के संदर्भ में जानकारी दी जाये एवं अनुप्रेक्षाओं के प्रयोग भी करवाए जायें।
- **02 अक्टूबर, 2011 रविवार : अहिंसा दिवस**
  वर्तमान में बढ़ती हुई हिंसा को रोकने के लिए अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण ने अहिंसा समवाय के माध्यम से अहिंसा प्रशिक्षण का प्रवर्तन किया है। इस दिन गोष्ठियों, सभाओं, शिविरों द्वारा अहिंसा के स्वर को जन-जन तक पहुँचाया जाए। अहिंसा में विश्वास रखने वाले व्यक्तियों/संगठनों से संपर्क किया जाए एवं सामूहिक कार्यक्रम आयोजित किए जाएं।

प्राथमिक शिक्षा का गिरता स्तर

डॉ. रामप्रताप गुप्ता

आंकड़े बताते हैं कि भारत के 95 प्रतिशत बच्चे विद्यलयों में प्रवेश ले चुके हैं। इसके बावजूद यूनेस्को ने भारत को शिक्षा के संबंध में निचली पायदान पर रखा है। शिक्षा में गुणात्मक सुधार किए बिना हम विकास का लाभ आम नागरिकों तक नहीं पहुँचा सकते। भारतीय शिक्षा में व्याप्त अंतर्विरोधों को उजागर करता यह आलेख–

सन् 1966 में प्रस्तुत कोठारी आयोग की रिपोर्ट में यह अनुशंसा की गयी थी कि सरकार सन् 1986 तक देश के 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के प्रत्येक बच्चे के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था करें। ऐसा न होने से देश में निरक्षर वयस्कों की संख्या बढ़ती ही गई। साक्षरता के प्रतिशत की दृष्टि से भारत का स्थान उससे कम प्रति व्यक्ति आय वाले राष्ट्रों जैसे-घाना, केन्या, जाम्बिया, कंबोडिया इत्यादि से भी नीचे चला गया। अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर शर्मिंदगी की स्थिति से मुक्ति पाने के लिए भारत ने जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत विश्व बैंक की सहायता से सन् 2002 में सर्वशिक्षा अभियान प्रारंभ किया ताकि देश के हर बच्चे को शाला में प्रवेश दिलाया जा सके और साथ ही उसे 14 वर्ष तक की आयु तक शाला में ही शिक्षा हेतु बैठाया जा सके।

पिछले 8 वर्ष से चलाए जा रहे इस कार्यक्रम के माध्यम से देश के 6 वर्ष की आयु के 95 प्रतिशत बच्चों को शाला में प्रवेश दिलाने में सफलता प्राप्त की जा चुकी है। यह प्रतिशत शिक्षा की दृष्टि से विकसित राष्ट्रों के प्रतिशत के लगभग बराबर या थोड़ा ही कम है। सरकार के इस दावे की अंतर्राष्ट्रीय संगठनों के द्वारा पुष्टि भी की जा चुकी है।

अंतर्राष्ट्रीय संगठनों द्वारा सत्यापित इस सफलता के बावजूद हाल ही में आई यूनेस्को की सर्वशिक्षा अभियान की निगरानी रिपोर्ट 2010 में भारत को शिक्षा विकास सूचकांकों की दृष्टि से विश्व के 128 राष्ट्रों की सूची में 106वां जैसा निम्न स्थान दिया गया है। सबसे पिछड़े राष्ट्रों की तुलना में तेजी से आर्थिक विकास कर रहे भारत का शिक्षा विकास सूचकांकों की दृष्टि से उनसे भी नीचे का स्थान प्राप्त करना निःसंदेह एक अपमानजनक स्थिति है। इस स्थिति के लिए जिम्मेदार घटकों की तलाश और उन्हें दूर करने के लिए अविलम्ब प्रयास आवश्यक है। जिम्मेदार घटकों की तलाश में हमें शिक्षा विकास सूचकांकों में शामिल किए गए घटकों पर नजर डालनी होगी। इसके निर्माण में वयस्क साक्षरता, सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत लिंग आधारित प्रवेश और प्रविष्ठ बच्चों में से कक्षा पाँचवी तक की शिक्षा पूरी

करने वाले बच्चों के प्रतिशत को शामिल किया जाता है।

भारत की वयस्क साक्षरता 66 प्रतिशत के निम्न स्तर पर है तथा इसे दीर्घकाल में ही सुधारा जा सकता है। 6 वर्ष की आयु से विद्यालयों में प्रवेश पाए बच्चों को कक्षा पाँचवीं तक की शिक्षा पूरी करने तक शाला में बैठाए रखने में भी वांछित सफलता नहीं मिली है। इन बच्चों में से 34 प्रतिशत बच्चे तो पाँचवी कक्षा तक पहुँचने के पूर्व ही शाला छोड़ देते हैं।

आज देश के अधिकांश गरीब पालक भी चाहते हैं कि उन्हें चाहे कितनी भी परेशानियां झेलनी पड़ें, परन्तु उनके बच्चे-बच्चियां पढ़ें और आगे बढ़ें। यही कारण है कि भ्रमणशील समुदायों को छोड़ दें तो सभी पालक अपने बच्चों को शाला में प्रवेश दिला रहे हैं। इसके पश्चात तो शाला का यह दायित्व बनता है कि अपने यहाँ ऐसा माहौल बनाएं कि बच्चे शाला में ही बने रहें। शिक्षाविद् भारत में शालाओं में भर्ती बच्चों को अपने यहाँ बिठाए रखने की असफलता के लिए तीन कारणों को जिम्मेदार मानते हैं। प्रथम–शालाओं का आकर्षक और सर्वसुविधा सम्पन्न न होना। दूसरा–गरीबी की पृष्ठभूमि में बालश्रम से प्राप्त आय और देश के परिवारों के बड़े भाग में बच्चे को शिक्षित बनाने की परम्परा का न होना। तीसरा–देश के परिवारों के बड़े भाग में बच्चे को शिक्षित बनाने की परम्परा का न होना।

इस दृष्टि से जब देश की प्राथमिक शालाओं की वर्तमान स्थिति पर नजर डालते हैं तो अत्यंत अफसोसजनक परिदृश्य सामने आता है। भारत में प्रारंभिक शिक्षा संबंधी सन् 2009-2010 के आंकड़ों के अनुसार देश के पाँच कक्षाओं वाले प्राथमिक विद्यालयों में कक्षों की औसत संख्या तीन ही है और 14 प्रतिशत शालाएं तो एक ही कक्ष में लगती हैं। इसी तरह शिक्षकों का औसत भी तीन ही है। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षक को एक ही समय में एक ही कमरे में एक से अधिक कक्षाओं का अध्यापन करना पड़ता है। अगर शिक्षक आवश्यक योग्यता वाला तथा पूर्ण रूप से प्रशिक्षित भी हो तो भी प्रथम बार प्रवेश लेने वाले बच्चों के लिए शिक्षण को आकर्षक बनाए रखना संभव नहीं होगा। उसकी सारी ऊर्जा तो उन्हें घेरकर रखने में ही चुक जाएगी।

सरकार वर्तमान में 40 छात्रों पर एक शिक्षक का प्रावधान करती है। शाला में प्रथम बार प्रवेश लेने वाले 40 बच्चों पर एक शिक्षक का प्रावधान अनुपयुक्त है। प्राथमिक शाला में आने वाले छोटे-छोटे बच्चों पर शिक्षक का व्यक्तिशः ध्यान देना आवश्यक होता है। अगर हम चाहते हैं कि **प्राथमिक कक्षाओं का शिक्षक हर छात्र पर वैयक्तिक ध्यान दे और उन्हें होने वाली कठिनाइयों का निराकरण करे तो हमें देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अधिक से अधिक 25 बच्चों पर एक शिक्षक के मापदण्ड को अपनाकर आवश्यक शिक्षकों की व्यवस्था करनी ही होगी।** आवश्यकता से कम शिक्षकों के प्रावधान से सरकार को भले ही शिक्षा बजट को न्यूनतम बनाए रखने में मदद मिलती हो, परंतु इस प्रक्रिया में शिक्षा के सारे माहौल के अनाकर्षक बनने से बच्चों को शाला छोड़ने को बाध्य होना पड़ता है। इससे उनकी शिक्षा के लिए किए गए सारे प्रयास व्यर्थ हो जाते हैं।

अन्य सुविधाओं की दृष्टि से भी भारतीय शालाओं की स्थिति को देखें तो हम पाते हैं कि देश की 15 प्रतिशत शालाओं में तो पेयजल की भी व्यवस्था नहीं है। 36 प्रतिशत शालाओं में शौचालयों की तथा 56 प्रतिशत में लड़कियों के लिए अलग से शौचालयों की सुविधा नहीं है। इसी तरह तीन-चौथाई शालाओं में विद्युत व्यवस्था नहीं है। आज कम्प्यूटर युग होने की स्थिति में भी सरकार केवल 5.7 प्रतिशत स्कूलों में ही कम्प्यूटर की व्यवस्था कर पाई है। एक तिहाई शाला भवनों को मरम्मत की आवश्यकता है। प्राथमिक चिकित्सा उपकरणों का भी अभाव ही है। फिर ये सब आंकड़े औसत के हैं। सुविधाओं की दृष्टि से क्षेत्रीय विषमताएं भी अत्यधिक हैं। बिहार में 59 बच्चों पर एक शिक्षक है व 92 बच्चों के लिए एक ही कक्ष है।

अगर हम चाहते हैं कि देश का प्रत्येक बच्चा पढ़े एवं आगे बढ़े तो सरकार को शालाओं को सर्वसुविधा सम्पन्न बनाना होगा। योग्य, पूर्ण प्रशिक्षित और स्थायी शिक्षकों की नियुक्ति करनी होगी। वर्तमान में सरकार द्वारा इस दिशा में प्रयास करने की इच्छा का पूर्ण अभाव दिखाई दिया है। सरकार ने देश के हर बच्चे को कक्षा आठवीं तक की शिक्षा अनिवार्य करने संबंधी विधेयक संसद से पास तो करा लिया है, उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर हुए भी समय बीत गया है परंतु उसे अभी तक लागू नहीं किया है। हम देश के कोने-कोने में स्तरीय सड़कें पहुँचाने में समर्थ हो सकते हैं क्योंकि ऐसा करने में वाहन उद्योग के मालिकों को अपना व्यवसाय बढ़ाने की सुविधा मिलती हैं तो कोई कारण नहीं कि देश के भावी कर्णधारों को शिक्षित करने के उद्देश्य से सर्वसुविधा सम्पन्न, आकर्षक माहौल वाली प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकते? जब तक हम शिक्षा को समुचित प्राथमिकता प्रदान कर, प्राथमिक शालाओं को सर्वसुविधा सम्पन्न और बच्चों के लिए आकर्षक नहीं बनाते हैं तब तक भर्ती बच्चों का बड़ा भाग आठवीं कक्षा के पूर्व ही शाला त्याग करने को बाध्य होता रहेगा।

–सप्रेस

अणुव्रत अधिवेशन-2011

62 वें अणुव्रत अधिवेशन का उद्घाटन सत्र 31 जुलाई 2011 को प्रातः 9.30 बजे अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण के सान्निध्य एवं वरिष्ठ समाजसेवी अन्ना हजारे की प्रमुख उपस्थिति में तेरापंथ की उद्गम स्थली केलवा (राजसमंद-राजस्थान) में हुआ। अणुव्रत महासमिति के महामंत्री विजयराज सुराणा ने स्वागत भाषण में कहा बचपन में राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के आजादी आंदोलन की झलक देखी थी, पर आज उन्हीं के प्रतिरूप आदरणीय अन्ना हजारे को देखकर, वही आंखें प्रफुल्लित हो रही हैं। गांधीवादी विचारक एवं सामाजिक कार्यकर्ता अन्ना हजारे का अणुव्रत अधिवेशन के उद्घाटन अवसर पर मैं स्वागत, अभिनंदन करता हूं। आचार्य तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आंदोलन देश में अहिंसात्मक एवं नैतिक मूल्यों का प्रचार-प्रसार देशभर में फैली 209 अणुव्रत समितियों के माध्यम से हो रहा है। प्रतिवर्ष होने वाला यह वार्षिक समारोह युवा मनीषी अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण के सान्निध्य में हो रहा है, जिसका उद्घाटन एक सात्विक महापुरुष द्वारा होने से अणुव्रत परिवार अपने को गौरवान्वित महसूस कर रहा है।

इस अवसर पर आचार्य महाश्रमण, मंत्री मुनि सुमेरमल 'लाडनूं', अणुव्रत प्रभारी मुनि सुखलाल, साध्वीप्रमुखा आदि ने भी संबोधित किया। कार्यक्रम का सफल संयोजन अणुव्रत प्रवक्ता डॉ. महेन्द्र कर्णावट ने किया।

दोपहर का सत्र मुनि सुखलाल के सान्निध्य में प्रवचन पण्डाल के परिपार्श्व में बने कॉन्फेन्स हॉल में हुआ। इसमें विभिन्न समितियों के कार्यों पर चर्चा हुई। इसकी अध्यक्षता राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद के अध्यक्ष भीकमचंद नखत ने की एवं संयोजन बाबूलाल गोलछा ने किया।

तृतीय सत्र रात्रिकालीन आचार्य महाश्रमण के सान्निध्य में प्रवचन पण्डाल में हुआ। संयोजन महामंत्री विजयराज सुराणा ने किया। पिछले वर्ष सरदारशहर अधिवेशन के अवसर पर एवं उसके बाद राजसमंद में आचार्यश्री द्वारा दिये गये **''अणुव्रत सेवी''** संबोधन प्राप्त 16 कार्यकर्ताओं का सम्मान किया गया। संस्था अध्यक्ष निर्मल एम. रांका, उपाध्यक्ष जी.एल. नाहर, उपाध्यक्ष जुगराज नाहर, अर्जुनलाल बाफना के अलावा स्वतंत्रता सेनानी डॉ. बी.एन. पांडेय एवं अणुव्रत लेखक मंच के संयोजक डॉ. नरेन्द्र शर्मा 'कुसुम' ने कार्यकर्ताओं को अणुव्रत सेवी के मोमेण्टे भेंट किये।

इसी सत्र में दिल्ली से समागत कुसुम लूनिया ने भी अणुव्रत के संदर्भ में अपने सामयिक विचार रखे।

द्वितीय दिवस :

1 अगस्त 2011 प्रातःकालीन सत्र का संयोजन राजस्थान प्रदेश अणुव्रत समिति के अध्यक्ष सम्पत शामसुखा एवं दिल्ली प्रदेश अणुव्रत समिति के अध्यक्ष बाबूलाल दूगड़ ने किया। कार्यक्रम का विषय था आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह योजना पर चिंतन। बिहार संस्कृत शिक्षा बोर्ड पटना के अध्यक्ष सिद्धेश्वर प्रसाद, उड़ीसा ठाकुर बाबा, डॉ. बी.एन. पांडेय ने आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह के संबंध में अपने विचार रखे एवं इस अभियान की महत्ता पर प्रकाश डाला। अणुव्रत महासमिति के उपाध्यक्ष जी. एल. नाहर, अर्जुनलाल बाफना एवं अन्य वक्ताओं ने आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी वर्ष एवं अणुव्रत आंदोलन पर विचार रखते हुए कहा आचार्य तुलसी शताब्दी वर्ष समारोह को दृष्टिगत रखते हुए हमें अणुव्रत दर्शन का प्रचार-प्रसार तो करना ही चाहिए। अणुव्रत पत्रिका के संपादक डॉ. महेन्द्र कर्णावट ने कहा इस शताब्दी वर्ष के उपलक्ष में स्मृति ग्रंथ का प्रकाशन हो एवं इसकी तैयारी अभी से शुरू कर देनी चाहिए।

मुनि सुखलाल एवं मुनि किशनलाल का भी सान्निध्य प्राप्त हुआ। मुनिद्वय का विचार था कि अब इस कार्य को शुरू करने में ज्यादा देर नहीं होनी चाहिए। अणुव्रत महासमिति को क्या-क्या कार्य करने हैं वह रेखांकित कर उसकी कार्य-योजना बना लेनी चाहिए। अध्यक्ष निर्मल एम. रांका ने कहा कि अणुव्रत की उद्गम स्थली छापर, सरदारशहर एवं कुछ अन्य स्थलों पर अणुव्रत द्वार, अणुव्रत स्तंभ बनने चाहिएं तथा भारत के अंतिम छोर कन्याकुमारी में भी जहां आचार्य तुलसी पधारे थे एक अणुव्रत की आचार संहिता की पट्टिका स्थापित होनी चाहिए। उपाध्यक्ष जुगराज नाहर ने इस कार्य को करने में अपना सहयोग देने का आश्वासन दिया। निर्मल एम. रांका ने यह भी कहा कि दिल्ली से बीकानेर जाने वाली एक मेल/एक्सप्रेस गाड़ी का नाम अणुव्रत एक्सप्रेस रखा जाना चाहिए। विजयराज सुराणा का कथन था कि शताब्दी वर्ष पर आचार्य तुलसी व अणुव्रत के लोगों को इस हेतु डाक टिकट प्रकाशित करवाने की चेष्ट करनी चाहिए एवं कार्ययोजना बनाकर समयबद्ध तरीके से कार्य शुरू कर देना चाहिए।

इस चिंतन के बाद महासमिति की कार्यसमिति बैठक निर्मल एम. रांका की अध्यक्षता में एजेण्डे के अनुसार आयोजित हुई। बैठक में कई निर्णय लिये गये एवं संविधान संशोधन का विषय आगे आने वाली कार्यसमिति पर सौंप दिया गया।

1 अगस्त 2011 दोपहर में अणुव्रत महासमिति की वार्षिक साधारण सभा की बैठक आयोजित हुई। वार्षिक प्रतिवेदन पर चर्चा, ऑडिट रिपोर्ट आदि का वाचन करने के अलावा वार्षिक कार्ययोजना व बजट पर भी चिंतन हुआ, जोकि वार्षिक प्रतिवेदन में प्रकाशित किया गया है।

विजयराज सुराणा ने बताया कि वर्तमान कार्यसमिति का दो वर्ष का कार्यकाल समाप्त हो गया है, अतः अब नये अध्यक्ष का चुनाव होना है। अणुव्रत महासमिति के महामंत्री के रूप में तीन अलग-अलग अध्यक्षों के साथ मेरा यह चौथा कार्यकाल है, अतः इस दौरान मेरी कार्य शैली में यदि कोई गलती या त्रुटि हुई हो तो मैं इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूं। मैं पूरी कार्यकारिणी भंग करने की पेशकश करता हूं। अध्यक्ष निर्मल एम. रांका ने भी अपने अध्यक्षीय काल के कार्यों का विवरण प्रस्तुत किया और कहा कि हमें अणुव्रत कार्यों में बराबर सहयोग देना है।

राजस्थान प्रदेश अणुव्रत समिति के अध्यक्ष सम्पत शामसुखा ने निवृत होने वाले अध्यक्ष एवं कार्यसमिति के कार्यों के लिए धन्यवाद प्रस्ताव पेश किया। कुछ अन्य वक्ताओं ने भी ऐसी ही भावनाएं व्यक्त कीं। नये अध्यक्ष के चुनाव हेतु जी.एल. नाहर को पूर्व में ही चुनाव अधिकारी नियुक्त कर लिया गया था। उन्होंने अपना कार्य संपादित करते हुए कहा कि मुझे महामंत्री द्वारा आगामी अध्यक्ष के नामांकन के दो लिफाफे प्राप्त हुए हैं। जिनमें अणुव्रत महासमिति के आगामी अध्यक्ष पद के लिए बाबूलाल गोलछा (रतनगढ़-दिल्ली) का नाम दिया गया है।

अन्य कोई नाम न होने से उन्हें आगामी दो वर्ष हेतु अणुव्रत महासमिति के नये अध्यक्ष के रूप में सर्वसम्मति से निर्विरोध चुना गया। सभी उपस्थित सदस्यों ने उनका करतल ध्वनि एवं माल्यार्पण द्वारा स्वागत किया एवं अपनी शुभकामनाएं प्रेषित की।

इस अवसर पर पूर्व अध्यक्ष निर्मल एम. रांका ने उन्हें कार्यभार सौंपते हुए बधाई दी, एवं अपने विचार रखे।

नवनिर्वाचित अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा ने अणुव्रत आंदोलन को आगे बढ़ाने का आश्वासन दिया।

तत्पश्चात सभी सदस्य करीब सायं 5 बजे गांधी सेवा सदन राजसमंद द्वारा उपलब्ध कराई गयी बसों द्वारा रवाना होकर गांधी सेवा सदन पहुंचे एवं वहां डॉ. महेन्द्र कर्णावट परिवार द्वारा निर्मित मेवाड़ का अजीज एवं स्वादिष्ट भोजन किया। लगभग 200 व्यक्तियों ने स्वादिष्ट भोजन का आनंद लिया। रात्रि में अणुविभा के नवनिर्मित महाप्रज्ञ हॉल में भजन एवं गीतों का क्रम रहा, जिसका सदस्यगणों ने खूब आनन्द लिया।

तृतीय दिवस :

2 अगस्त 2011 को सभी सदस्यगण गांधी सेवा सदन द्वारा उपलब्ध कराई गयी बसों द्वारा केलवा पहुंचे। आचार्य तुलसी महाप्रज्ञ सेवा कल्प द्वारा विकलांगों को दिये जाने वाले कृत्रिम पांव वितरण समारोह के बाद महामंत्री विजयराज सुराणा ने अधिवेशन की संक्षिप्त रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस बार अणुव्रत अधिवेशन में देश के 12-13 प्रांतों के विभिन्न स्थानों से 250 संभागियों ने भाग लिया।

नवनिर्वाचित अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा ने अपना संक्षिप्त वक्तव्य एवं भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की। निवर्तमान अध्यक्ष निर्मल एम. रांका ने भी अपने विचारों की प्रस्तुति देते हुए सभी के प्रति आभार प्रकट किया।

आचार्य महाश्रमण ने अपना उद्बोधन देते हुए कार्यकर्ताओं को अणुव्रत कार्य करते रहने का आह्वान किया। इस अवसर उन्होंने अणुव्रत महासमिति के पूर्व अध्यक्ष निर्मल एम. रांका बगड़ीनगर-कोयम्बटूर एवं मेवाड़ के भामाशाह जुगराज नाहर दिवेर-चेन्नई को **''अणुव्रत सेवी''** अलंकरण से संबोधित किया। सभी सदस्यों ने इस पर अपना अहोभाव प्रकट किया।

अणुव्रत अधिवेशन संभागियों की आवास व्यवस्था तुलसी साधना शिखर एवं अणुविभा राजसमंद में थी। दोनों ही संस्थाओं ने आवास व्यवस्था निःशुल्क की एवं अणुविभा के बिमल शामसुखा का चाय, भोजन इत्यादि की व्यवस्था में प्रशंसनीय श्रम एवं सहयोग रहा।

अधिवेशन में भाग लेने वाले सभी प्रतिनिधियों हेतु डालचंद कोठारी (रींछेड़-मुम्बई) ने शानदार फोल्डर उपलब्ध करवाये। अणुव्रत महासमिति उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है। अणुव्रत महासमिति कार्यालय दिल्ली में कार्यरत चार व्यक्ति सतेन्द्र भारद्वाज, सत्यपाल धामा, नवीन शर्मा व गंगा सहाय ने पूरे मनोयोग एवं श्रमपूर्वक कार्य किया। मैं विगत 30-35 वर्षों से अणुव्रत से जुड़ा हुआ हूं। अणुव्रत महासमिति में अलग-अलग कई अध्यक्षों के कार्यकाल में कोषाध्यक्ष, उपाध्यक्ष इत्यादि पदों पर रहा एवं निर्मल एम. रांका के कार्यकाल में चौथी बार महामंत्री पद का दायित्व वहन किया। इस दौरान मेरी कार्यशैली में मुझसे यदि कोई भूल/त्रुटि हुई हो अथवा मेरे द्वारा किसी को कोई कष्ट हुआ हो तो मैं क्षमाप्रार्थना मांगते हुए इस रिपोर्ट की इतिश्री कर रहा हूं।

विजयराज सुराणा

झाँकी है हिन्दुस्तान की

- स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कुरुक्षेत्र के लाड़वा स्थित ओ.पी. जिंदल मेमोरियल पार्क में 206 फुट ऊंचा तिरंगा झंडा फहराया गया। यह देशभर में फहराए जाने वाले सबसे ऊंचे तिरंगों में से एक है। यह ध्वज 72 फुट चौड़ा और 48 फुट लम्बा है, जबकि जिस स्तंभ पर यह फहराया गया है वह हाईटेंशन स्टील की बनी है और इसका वजन 12.5 टन है। खास बात यह है कि इस तिरंगे को रिमोट कंट्रोल की मदद से फहराया जाता है।

  कुरुक्षेत्र के युवा सांसद नवीन जिंदल ने देश के हर घर के ऊपर व 24 घंटे स्वतंत्र रूप में राष्ट्रीय ध्वज फहराने का अधिकार दिलाने व सुप्रीम कोर्ट में लम्बी लड़ाई लड़ने के बाद यह संकल्प लिया है कि वह देश के हर जिला मुख्यालय पर 100 से 200 फुट ऊंचा ध्वज फहराएंगे।

  अब तक जिंदल फ्लैग फाउंडेशन ऑफ इंडिया की ओर से हरियाणा में गुड़गांव, सोनीपत, हिसार, लाड़वा, कैथल, कुरुक्षेत्र, पानीपत, शाहाबाद और पलवल में लगाए जा चुके हैं। अब तक देशभर में 24 जगह राष्ट्रीय ध्वज फहराए जा चुके हैं। इनमें से आठ 206 फुट ऊंचे हैं, जबकि बाकी 100 फुट की ऊंचाई पर लगे हैं।

- चावल खाने के शौकीनों को जल्द ही 18वीं शताब्दी में पैदा होने वाले चावलों का स्वाद चखने का मौका मिलेगा। इन चावलों की किस्मों की विशेषता यह है कि इनका स्वाद, सुगंध व पोषक तत्व निराले हैं, जो आजकल की हाईब्रिड फसलों के जमाने में कहीं खो गए हैं। देश के दूर-दराज क्षेत्रों के मुट्ठीभर परंपरागत खेती करने वाले किसानों से कृषि वैज्ञानिकों को तीन दर्जन से अधिक धान की किस्में हाथ लगी हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि वैज्ञानिक लगभग खो चुकी चावल की किस्मों के परीक्षण और जीन विकसित करने में लगे हैं। कृषि वैज्ञानिकों को पिछले दिनों राष्ट्रीय पादक अनुवांशकी संसाधन ब्यूरो के सम्मेलन में आए किसानों से उक्त चावल की किस्मों का पता चला है। 18वीं शताब्दी की धान की तीन दर्जन नई किस्मों का पता चला है। चावलों के जीन को बदले हुए पर्यावरण व मौसम के मुताबिक विकसित किया जा रहा है। सफलता मिलने पर इनका पंजीकरण किया जाएगा। इन चावलों का स्वाद, रंग, पोषण और सुगंध आजकल पैदा होने वाली फसल से बिल्कुल अलग और बेहतर है।

कथनी-करनी में समानता हो : आचार्य महाश्रमण

केलवा, २ अगस्त। महाप्रज्ञ सेवा प्रकल्प द्वारा गुलाब कौशल्या चेरिटेबल ट्रस्ट, जयपुर के सौजन्य से छःदिवसीय निःशुल्क विकलांग सहायता शिविर का समापन। बड़ी संख्या में उपस्थित विकलांगों को आवश्यकतानुसार जयपुर फुट, कैलिपर, बैसाखियां आदि वितरित किए गए। प्रकल्प के अध्यक्ष नरेश मेहता ने ट्रस्ट द्वारा समाज कल्याण की दिशा में किए जा रहे कार्यों का विवरण प्रस्तुत करते हुए कार्यक्रम के मुख्य अतिथि राजस्थान के सार्वजनिक निर्माण मंत्री प्रमोद जैन भाया का परिचय प्रस्तुत किया। सेवा प्रकल्प के मंत्री राकेश नौलखा ने अपने उद्गार व्यक्त किए। आचार्य महाश्रमण प्रवास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष महेन्द्र कोठारी ने आगंतुक अतिथियों का स्वागत एवं महामंत्री सुरेन्द्र कोठारी ने आभार व्यक्त किया।

अणुव्रत महासमिति के निवर्तमान अध्यक्ष निर्मल रांका एवं महामंत्री विजयराज सुराणा ने अपने भावपूर्ण विचार व्यक्त किए। महासमिति के नवनिर्वाचित अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा ने अपनी भावी कार्य योजना प्रस्तुत की। कार्यक्रम में जिला कलक्टर प्रीतम बी. यशवंत, बारां के जिला प्रमुख रामचरण एवं उनके निजी सहायक सुबोध जैन, पी.डब्ल्यू.डी. के ए.सी.ई. अनिल शर्मा आदि उपस्थित थे।

आचार्य महाश्रमण ने कहा 'आत्मा अपने स्वरूप को प्राप्त हो सकती है, बशर्ते कि वह संपूर्ण रूप से कर्ममुक्त बने। मलिन आत्मा के कर्म चिपकते हैं, जबकि सिद्धात्मा के कर्मों का बंधन नहीं होता। सिद्धत्व की प्राप्ति में मात्र अशुभ कर्म ही नहीं, शुभकर्म भी बाधक हैं। हमारा जैसा चित्त होगा, वैसी ही भावना हमारे मन में विद्यमान रहेगी, इसलिए चित्तवृत्ति को धार्मिक बनाना अपेक्षित है। प्रयास हो कि मन विकारों से ग्रसित न हो तथा कथनी-करनी में समानता रहे।'

राजनीति को सेवा का एक माध्यम बताते हुए आचार्यवर ने कहा 'बहुत से लोग राजनीति में रहकर सेवा करते हैं। जनता की समस्याओं के निराकरण का प्रयास करते हैं। सामाजिक परिप्रेक्ष्य में यह भी एक अच्छी बात होती है। कुछ लोग सार्वजनिक जीवन में रहकर लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कार्य करते हैं। नरेश मेहता भी अपने ट्रस्ट के माध्यम से सेवा का प्रकल्प चला रहे हैं। कई वर्षों से ये इस क्षेत्र में लगे हुए हैं।' आचार्यवर ने इस अवसर पर विकलांगों को नशामुक्ति का संकल्प करवाया।

आचार्य महाश्रमण ने आगे कहा 'अणुव्रत अधिवेशन संपन्नता की ओर है। कार्यकर्ता अच्छे ढंग से कार्य को आगे बढ़ाते रहें। उनका उत्साह बना रहे। नवनिर्वाचित अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा निर्मल रांका के कार्य को आगे बढ़ाएं। निर्मल शासनसेवी मोतीलाल रांका के पुत्र हैं। कहा जा सकता है कि ये एक अच्छे पिता के अच्छे पुत्र हैं।' आचार्य महाश्रमण ने निर्मल रांका एवं जुगराज नाहर दिवेर की सेवाओं का उल्लेख करते हुए उन्हें **'अणुव्रत सेवी'** के संबोधन से संबोधित किया। कार्यक्रम का संचालन मुनि मोहजीतकुमार ने किया।

कल्याण का पथ

३ अगस्त। आचार्य महाश्रमण ने प्रातःकालीन कार्यक्रम में संबोधि के तीसरे अध्याय पर आधारित अपने मंगल प्रवचन में कहा 'पुण्य मुक्ति का हेतु नहीं होता और न ही उसका स्वतंत्र रूप में बंधन होता है। निर्जरा के साथ ही पुण्य का बंध संभव है। संबोधिकार ने कहा कि पुण्य अथवा भौतिक सुखों में आसक्ति और उनकी कामना करता हुआ व्यक्ति दुःखों का अर्जन कर लेता है। ज्यों-ज्यों व्यक्ति अन्तर्मुखी बनता है, त्यों-त्यों वह भोगों से विमुख होता चला जाता है। उत्तम तत्त्वों के ज्ञान से साधक के मन में विषयों के प्रति अनाकर्षण होने लगता है। भोगों से अनाकर्षण और उत्तम तत्त्वों के बोध से कल्याण का पथ प्रशस्त होता है।'

जैन वाङ्मय में उल्लिखित काम और भोग इन दो शब्दों का उल्लेख करते हुए आचार्यवर ने कहा 'पांच इन्द्रियों में श्रोत्र और चक्षु के विषय काम कहलाते हैं और शेष तीन स्पर्शनेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय के विषयों को भोग कहा जाता है। इन्द्रिय विषयों के प्रति राग-द्वेष के भाव से बचने का प्रयत्न करें।' आचार्यवर ने अणुव्रत के संदेश को अंगीकार करने की प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा 'गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत आन्दोलन का प्रवर्तन किया। उन्होंने अणुव्रत के माध्यम से जनता को नैतिक मूल्य और संयम को आत्मसात करने हेतु प्रेरित किया। अहिंसा, संयम, नैतिकता, करुणा आदि जीवन को उच्च भूमिका पर ले जाने वाले तत्त्व हैं। व्यक्ति उन्हें आत्मगत कर परम सुख और शांति की दिशा में अग्रसर हो सकता है।'

अनुशासन का पालन

४ अगस्त। आचार्य महाश्रमण ने प्रातःकालीन मंगल प्रवचन में कहा 'संसारी आत्मा कर्म पुद्गलों को आकर्षित करती रहती है। संवर के द्वारा इन पुद्गलों के आगमन का पथ रोका जा सकता है, उनके प्रवाह को निरुद्ध किया जा सकता है। जैन साधना पद्धति में संवर का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यदि नये कर्मों के आगमन का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है तो पूर्वार्जित कर्म पुद्गल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। चौदहवें गुणस्थान में संवर पूरी तरह से सध जाता है और आत्मा कुछ ही क्षणों में संसार से मुक्त हो जाती है।'

आचार्य महाश्रमण ने संयम की प्रेरणा प्रदान करते हुए कहा 'जीवन में यदि संयम होता है तो अनुशासन का अनुपालन आसान बन जाता है। अन्यथा उनके अनुपालन में कठिनाई की अनुभूति होती है। लोकतंत्र की सुव्यवस्था के लिए कर्त्तव्यनिष्ठा और अनुशासन आवश्यक तत्त्व होते हैं। इन दोनों के बिना लोकतंत्र में समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं। न केवल लोकतंत्र अपितु सामाजिक और पारिवारिक संगठन में भी अनुशासन और कर्त्तव्यनिष्ठा का अभाव समस्याओं का उत्पादक बन जाता है। संयम से अनुशासन का पथ स्वतः प्रशस्त हो जाता है। व्यक्ति अपने संयम को परिपुष्ट और मन को नियंत्रित करने का प्रयास करें। साधना के लिए संयम की नितान्त आवश्यकता होती है। उसके बिना साधना असंभव है। साधक संयम की साधना के द्वारा मुक्तिश्री का वरण कर सकता है।'

मंत्री मुनि सुमेरमल 'लाडनूं' का भी अभिभाषण हुआ।

कठिन कार्य करें

५ अगस्त। आचार्यप्रवर ने अपने प्रातःकालीन मंगल प्रवचन में कहा 'साधना के क्षेत्र में संयम का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। संयम की साधना कुछ कठिन भी होती है। प्राकृत वाङ्मय में कहा गया है कि पांच इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय पर विजय मुश्किल कार्य होता है। आठ कर्मों में मोहनीय कर्म का क्षय सबसे कठिन होता है, पांच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत की साधना अति दुष्कर है और तीन गुप्तियों में मनोगुप्ति की साधना

www.terapanthinfo.com

विद्यार्थियों ने स्वीकार किये नशामुक्ति के संकल्प

अत्यन्त कठिन है। लेकिन जिसे आगे बढ़ना होता है, उसे कठिन से कठिन कार्य का निष्पादन करना होता है।' जनसमूह को जिह्वा संयम की प्रेरणा प्रदान करते हुए श्रद्धेय आचार्यवर ने कहा 'संयम की साधना अनेक प्रकार से की जा सकती है। उनमें से एक है जिह्वा का संयम। इसके दो भेद हैं खाद्य संयम और वाणी संयम। साधना और स्वास्थ्य की दृष्टि से खाद्य संयम महत्त्वपूर्ण होता है। लंघन भी खाद्य संयम का एक प्रकार है। इसे परमौषध माना गया है। व्यक्ति खाद्य संयम के साथ अपनी वाणी पर भी संयम करने का अभ्यास करे। कटु वचनों के प्रयोग से पारस्परिक संबंधों में कटुता आ सकती है। कटु और मिथ्या भाषा का प्रयोग न करने का संकल्प बड़ी साधना होती है।'

आचार्य महाश्रमण ने उपस्थित विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा 'विद्यार्थियों में ज्ञान और आचार दोनों का विकास अपेक्षित होता है। विद्यार्थी का लक्ष्य होता है विद्यार्जन। आलस्य इस लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक बनता है। पुरुषार्थ के द्वारा साफल्य को अर्जित किया जा सकता है। विद्यार्थियों के सामने संभावित लम्बा भविष्य होता है। उसे सफल बनाने के लिए जीवन में धर्म का अवतरण अपेक्षित होता है। जिस व्यक्ति के जीवन में धर्म नहीं होता, वह अच्छा और जागृत जीवन नहीं जी सकता। स्वस्थ जीवनशैली के लिए धर्म की साधना जरूरी है।'

मेधावी छात्र सम्मान समारोह

६ अगस्त। आज आचार्य महाश्रमण की पावन सन्निधि एवं तेरापंथी महासभा के तत्त्वावधान में मेधावी छात्र सम्मान समारोह एवं द्विदिवसीय कार्यशाला का शुभारंभ हुआ। प्रातःकालीन कार्यक्रम में आचार्य महाश्रमण चातुर्मास व्यवस्था समिति के अध्यक्ष महेन्द्र कोठारी ने स्वागत भाषण प्रस्तुत किया। के. सी. जैन ने मेधावी छात्र प्रोत्साहन परियोजना की विशद जानकारी देते हुए बताया इस परियोजना के अंतर्गत अब तक एक करोड़ साठ लाख बीस हजार आठ सौ पचहत्तर की राशि छात्रवृत्ति के रूप में प्रदान की जा चुकी है। प्रेक्षाप्राध्यापक मुनि किशनलाल ने अपने विचार व्यक्त किए। मंत्री मुनिश्री ने कार्यक्रम में उपस्थित मेधावी विद्यार्थियों को उत्प्रेरित किया।

मेधावी छात्र-छात्राओं को संबोध प्रदान करते हुए आचार्य महाश्रमण ने कहा 'मेधा उस शक्ति का नाम है, जो धारण करने में समर्थ होती है। जिसकी बुद्धि स्थिर और तीक्ष्ण होती है, वह मेधावी कहलाता है। ज्ञान का विकास प्रशस्य है, किन्तु चारित्र विकास के अभाव में कोरा ज्ञान अपर्याप्त है। अतः ज्ञान के साथ चारित्र का विकास भी नितान्त अपेक्षित है। ऐसा होने पर बुद्धि में शुद्धि बनी रहती है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में आई.क्यू. का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह विकास का एक आयाम है। विकास की परिपूर्णता अथवा सर्वांगीण विकास के लिए उसके साथ ई.क्यू. और एस.क्यू. की आवश्यकता रहती है। ज्ञान के साथ चारित्र का योग हो तो विद्यार्थी सफलता को प्राप्त कर सकता है।'

आचार्य महाश्रमण ने इस संदर्भ में आगे कहा 'मेधावी छात्र-छात्राओं के पास मेधा का बल होता है, जिसे पल्लवित और पुष्पित करने के लिए संरक्षण की अपेक्षा होती है। मेधावी छात्र-छात्राओं को महासभा का संरक्षण प्राप्त हो रहा है। बालक-बालिकाओं के समुचित विकास में संरक्षण महत्त्वपूर्ण होता है। उसके बिना बच्चों का विकास अवरुद्ध भी हो सकता है। ये विद्यार्थी अपनी चित्तवृत्तियों और इन्द्रियों पर नियंत्रण रखें, नशे की प्रवृत्ति से दूर रहें, इनके विचार और व्यवहार अच्छे हों और पुरुषार्थ के द्वारा ये अपने व्यक्तित्व को सुशिक्षित और सुसंस्कारी बनाएं।' आचार्यवर की प्रेरणा से विद्यार्थियों ने नशामुक्त रहने का संकल्प स्वीकार किया। इस द्विदिवसीय सम्मान समारोह कार्यशाला में सैंकड़ों विद्यार्थी संभागी बने। उन्हें विविध विषयों का प्रशिक्षण दिया गया और विभिन्न श्रेणी के मेधावी छात्र-छात्राओं को 'गणाधिपति तुलसी स्वर्णपदक', 'आचार्य महाप्रज्ञ स्वर्णपदक', 'आचार्य महाश्रमण स्वर्णपदक' एवं 'तेरापंथी महासभा रजतपदक' व प्रमाणपत्र प्रदान किए गए।

सायंकाल विश्व हिन्दू परिषद के अंतर्राष्ट्रीय संगठन महामंत्री दिनेश अपने क्षेत्रीय सहयोगियों के साथ पूज्यवर की मंगल सन्निधि में उपस्थित हुए और विविध विषयों पर वार्तालाप किया।

विनम्रता एवं सहिष्णुता

७ अगस्त। प्रातःकालीन कार्यक्रम में मंत्री मुनिश्री ने अपने अभिभाषण में कहा 'मेधावी छात्र-छात्राएं समाज की धरोहर हैं। वे अपने दिमाग में नकारात्मक भावों को न आने दें। यदि विजातीय तत्त्वों ने प्रभावित करना शुरू कर दिया तो मस्तिष्क की ग्रहणशक्ति कमजोर हो जाएगी।'

आचार्यप्रवर ने अपने मंगल उद्बोधन में कहा 'कर्मबंधन में कषाय व योग कारण बनते हैं। इनसे मुक्त रहकर ही व्यक्ति कर्मबंधन से विलग रह सकता है।' देश के विभिन्न प्रान्तों से समागत मेधावी छात्र-छात्राओं को संबोधित करते हुए आचार्य महाश्रमण ने कहा 'शिक्षा जगत के लिए जीवनविज्ञान के प्रयोग बहुत उपयोगी हैं। इन प्रयोगों से विद्यार्थी अपनी मेधा शक्ति को विकसित एवं वृद्धिगत कर सकते हैं। विद्यार्थियों को आन्तरिक परिष्कार के साथ अपने आवेग एवं आवेश को भी नियंत्रित करना चाहिए। इससे ज्ञान-ग्रहण की क्षमता का विकास होता है और उनमें विनम्रता, सहिष्णुता जैसे मूल्यों का अवतरण होता है। मेधावी छात्रों को अध्यात्म विद्या का भी अध्ययन करना चाहिए।'

आज के 'फ्रेंडशिप डे' का उल्लेख करते हुए आचार्यश्री ने कहा ''मित्रता का व्यापक सूत्र है 'मित्ती में सव्वभूएसु' सब जीवों के साथ मेरी मैत्री हो। यह मित्रता स्वार्थ की चौखट से बाहर की हो। वस्तुतः हमारी आत्मा ही हमारी सच्ची मित्र होती है। व्यावहारिक दृष्टि से दूसरों को भी मित्र बनाया जा सकता है।' सच्ची मित्रता को परिभाषित करते हुए आचार्यवर ने कहा 'मित्रता पवित्र व हितकारी हो। वह आपका वास्तविक मित्र है जो आपको सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता है। विपरीत परिस्थिति में भी वह किसी को धोखा नहीं देता। ऐसी मैत्री विकसित हो तो वह लाभदायी हो सकती है।'

मुनि रजनीशकुमार ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए अपनी संकलित पुस्तक 'महाप्राण महाप्रज्ञ' आचार्यवर को उपहृत की। आचार्य महाप्रज्ञ के महाप्रयाण के बाद आचार्य महाश्रमण, साध्वीप्रमुखा, मुख्य नियोजिका सहित साधु-साध्वियों द्वारा रचित गीत व कविताएं इसमें संग्रहीत हैं। मुनि किशनलाल ने जीवन विज्ञान की अवगति दी।

www.terapanthinfo.com

विद्यार्थियों में हो संस्कारों का निर्माण

छापर। विद्यार्थी जीवन में संस्कारों का निर्माण होना चाहिए एवं शिक्षा का उद्देश्य बौद्धिक विकास व जीविकोपार्जन न होकर आध्यात्मिक विकास होना चाहिए। ये विचार भिक्षु साधना केन्द्र व्यवस्थापक मुनि सुमतिकुमार ने जनकल्याण राजकीय बालिका उच्च माध्यमिक विद्यालय में आयोजित समारोह में व्यक्त किए।

मुनिश्री ने कहा वर्तमान में संस्कारित शिक्षा अनिवार्य है, जिससे विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण हो सके एवं अनुशासन, विनम्रता, सहनशीलता का विकास हो सके। कार्यक्रम की अध्यक्षता विद्यालय की प्रधान सीता उपाध्याय ने की। मुख्य अतिथि नरेन्द्र नाहटा थे। इस अवसर पर जुगराज नाहटा परिवार के सौजन्य से विद्यालय की 24 छात्राओं को छात्रवृत्ति वितरित की गयी। प्रदीप दुधोड़िया ने नरेन्द्र नाहटा, प्रदीप सुराना एवं तेयुप उपाध्यक्ष का प्रतीक चिह्न भेंट कर सम्मान किया।

कार्यक्रम का शुभारंभ छात्राओं द्वारा अणुव्रत गीत के संगान से हुआ। मुनि देवार्यकुमार, शिक्षक चैनरूप दायमा ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर लक्ष्मीपत सुराना, जयप्रकाश सोनी, चंचल दुधोड़िया, चमन दुधोड़िया, मदनलाल गोयल, अणुव्रत समिति छापर के अध्यक्ष बाबूलाल दुधोड़िया, सुनीता माहेश्वरी, इन्दिरा शर्मा उपस्थित थे।

शिक्षक-छात्र संगोष्ठी

हांसी, 5 जुलाई। राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद संस्थान के तत्वावधान में संस्था के विशिष्ट मार्गदर्शक डॉ. हीरालाल श्रीमाली के नेतृत्व में विभिन्न प्रवृत्तियों के संदर्भ में संगोष्ठी का आयोजन हुआ। इसमें साध्वी मधुरेखा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। प्रातःकालीन प्रेक्षाध्यान योग सत्र डॉ. हीरालाल श्रीमाली के सान्निध्य में संपन्न हुआ। शा. प्रा. वि. रामपुरा, शा. कन्या प्रा.वि. कानूनगो प्रा. वि. डेडल पार्क, गुरुनानक देव पब्लिक स्कूल, सैनिक पब्लिक स्कूल, वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय भाटला में डॉ. श्रीमाली के मार्गदर्शन एवं सुरेशचन्द जैन के सान्निध्य में अनेक कार्यक्रम आयोजित हुए।

विभिन्न कार्यक्रमों में डॉ. श्रीमाली एवं सुरेश जैन ने शिक्षकों तथा विद्यार्थियों को गुणवान व संस्कारवान बनने की प्रेरणा प्रदान की। साथ ही दीर्घश्वास प्रेक्षा के प्रयोग करने एवं नशे से दूर रहने की सलाह दी। क्षेत्र के विभिन्न स्कूलों में अहिंसा प्रशिक्षक सह-पर्यवेक्षक अवधेश कुमार ने अहिंसा प्रशिक्षण का प्रदर्शन व नशामुक्ति की अनुप्रेक्षा के प्रयोग कराये। कार्यक्रमों की सफलता में अणुव्रत समिति हांसी के अध्यक्ष प्रदीप जैन, राजेश जैन, प्रेम खुराना, ईश्वर इत्यादि का सराहनीय श्रम रहा।

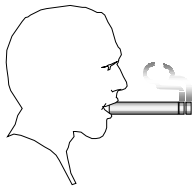

आपका मुँह
ऍश-ट्रे या कूड़ादान
नहीं

कोयम्बटूर में नशामुक्ति अभियान

कोयम्बटूर, 25 जुलाई। अणुव्रत समिति कोयम्बटूर के तत्वावधान में श्री नेहरू विद्यालय के शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं शिक्षक संसद संस्थान राजसमंद की उपस्थिति में एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। शिक्षक संसद संस्थान के डॉ. हीरालाल श्रीमाली, धर्मीचंद जैन, समिति के अध्यक्ष डॉ. गणेशन, मंत्री नरेन्द्र रांका, कोषाध्यक्ष प्रेम सुराना का स्वागत विद्यालय की प्रधानाचार्या पुनीत चंद्रशेखर ने किया। आगंतुकों का परिचय एवं उनके विचारों का हिन्दी से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद उप-प्रधानाचार्या सेनबगम रमेश ने किया।

डॉ. हीरालाल श्रीमाली ने शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा अगर विद्यार्थियों में गुरु के प्रति श्रद्धा, विश्वास एवं समर्पण भाव है तो गुरु आपको गुरु तुल्य बना देता है। आप में से ही शिक्षक, वैज्ञानिक, डॉक्टर, राजनीतिज्ञ, उद्योगपति व व्यवसायिक बनकर राष्ट्र के भविष्य को उज्जवल बनाने वाले बनेंगे। विद्यार्थी नकल न करें परन्तु वे अपनी अकल को बढ़ायें, अपनी स्मरण शक्ति, एकाग्रता को बढ़ायें। साथ ही व्यसनमुक्त जीवन के द्वारा वे अपनी ऊर्जा शक्ति एवं संकल्प शक्ति को भी बढ़ायें।

धर्मीचंद जैन ने कहा मन में खोट है, व्यसन है, अभिमान है वह विद्यार्थी किसी भी शिक्षक या व्यक्ति को प्रभावित नहीं कर सकता है। जीवन सकारात्मक एवं सृजनात्मक सोच का होना चाहिए। विद्यार्थियों को संकल्प शक्ति एवं स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिए प्रतिदिन 10 मिनट महाप्राण ध्वनि का प्रयोग करना चाहिए।

अणुव्रत समिति कोयम्बटूर के अध्यक्ष डॉ. गणेशन ने कहा हमारा मस्तिष्क और शरीर साफ एवं स्वच्छ रहेगा तो हमारी शिक्षा उपयोगी होगी। मादक तथा नशीले पदार्थ हमारे शरीर को स्वस्थ रखने वाले रसायनों को नष्ट करते हैं। हमारी संकल्प शक्ति एवं स्मरण शक्ति को कमजोर बनाते हैं। इनसे बचने के लिए अणुव्रत अर्थात् छोटे-छोटे व्रतों को ग्रहण कर अपने मनोबल, आत्मबल, संकल्प शक्ति एवं स्मरण शक्ति को बढ़ाएं। स्वयं स्वस्थ रहें एवं परिवार तथा समाज को भी प्रसन्नचित व खुश रखें।

अणुव्रत समिति के मंत्री नरेन्द्र एम. रांका ने धन्यवाद ज्ञापित किया। दूसरे चरण की वार्ता भारतीय विद्या भवन के प्रांगण में रजिस्ट्रार सोनपाल एवं प्रधानाचार्या कुमुधनी पेरिया स्वामी के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में संपन्न हुई। इस अवसर पर डॉ. हीरालाल श्रीमाली ने शिक्षक संसद संस्थान राजसमंद की रूपरेखा एवं उसके कार्यों पर प्रकाश डाला।

अणुव्रत महासमिति की सहभागिता

नई दिल्ली, 17 अगस्त। होटल ताज पैलेस दिल्ली के दरबार हॉल में ''वाकिंग द ग्यांट'' हरा-भरा, साफ-सुथरा भविष्य बनाये रखने के संदर्भ में न्यूज एक्स चैनल द्वारा प्रायोजित एक कार्यक्रम आयोजित हुआ। जिसमें अणुव्रत महासमिति ने भी अपनी सहभागिता दी। अणुव्रत महासमिति के अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा एवं रतनलाल सुराणा ने अणुव्रत महासमिति द्वारा प्रकाशित पर्यावरण संबंधी प्रचार-प्रसार सामग्री उपलब्ध करवाई। पर्यावरण संबंधी पुस्तिकाओं को कार्यक्रम में उपस्थित संभागियों ने पढ़ा और उसकी सराहना की। अनेक लोगों ने अध्यक्ष बाबूलाल गोलछा से संपर्क किया और अणुव्रत अभियान से जुड़ने की बात कहते हुए अपनी भागीदारी देने की इच्छा व्यक्त की।

www.terapanthinfo.com

स्वस्थ रहो - सफल बनो सेमिनार

कटक। स्वामी विवेकानंद राष्ट्रीय पुनर्वास प्रशिक्षण एवं अनुसंधान केन्द्र ओलटपुर में समणी निर्देशिका ज्ञानप्रज्ञा के सान्निध्य में ''स्वस्थ रहो - सफल बनो'' विषयक सेमिनार का आयोजन किया गया। भारत सरकार के सात संस्थानों में से एक निरतार में डायरेक्टर डॉ. संजय कुमार दास ने सभी का स्वागत किया। अमृत सांसद पुष्पा सिंघी ने समणीवृंद का परिचय दिया। 'निरतार' के सभागार में विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए समणी ज्ञानप्रज्ञा ने भगवान महावीर एवं आचार्य महाप्रज्ञ द्वारा बताये गये मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के सूत्रों की जानकारी दी।

समणी संचितप्रज्ञा ने आज की समस्याओं का जिक्र करते हुए कहा मनुष्य न तन से स्वस्थ है न मन से और न ही भाव से अतः स्वास्थ्य थैरेपी पर ध्यान देना आवश्यक है। अपनी जीवन शैली को संतुलित करते हुए संयम का अभ्यास करें। दैनिक जीवन में समय प्रबंधन करते हुए स्वयं के लिए भी कुछ समय नियोजित करें। इस तरह स्वस्थ रहकर ही सफलता प्राप्त कर सकते हैं। इस अवसर पर समणी प्रांजलप्रज्ञा व समणी भव्यप्रज्ञा ने भी अपने विचार रखे। मुस्कान संस्थान द्वारा स्थापित डॉल हाऊस का उद्घाटन किया। सेमिनार के अंतिम चरण में सभा के संरक्षक मंगलचंद चोपड़ा व उपासक दानमल नाहटा ने डॉ. संयजदास को संघीय साहित्य भेंट किया। उल्लेखनीय है केन्द्रीय सात केन्द्रों में से एक ओलटपुर में स्थित है। यहां पर आने वाले विकलांग एवं दुर्घटनाग्रस्त रोगी स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करते हैं। लगभग 300 चिकित्सक एवं कर्मचारी यहां कार्यरत हैं। 600 व्यक्ति विद्यार्थी के रूप में प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं। यहां इलाज के दौरान लम्बे समय तक भर्ती रहने वाले बच्चों के खेलने के लिए स्वयं सेवी संगठन मुस्कान ने डॉल हाऊस स्थापित किया है।

बाढ़ जनपदीय क्षेत्र में नशामुक्ति अभियान

बाढ़। राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद संस्थान राजसमंद एवं बिहार प्रदेश अणुव्रत समिति के संयुक्त तत्वावधान में बाढ़ जनपद के गांव-गांव में तथा शिक्षण संस्थानों में व्यसनमुक्ति अभियान एक आंदोलन के रूप में आगे बढ़ रहा है। जुलाई के अंतिम सप्ताह में ब्लॉक स्तरीय एक नशामुक्ति सभा लक्ष्मीनारायण चंद्रवंशी उच्च विद्यालय के प्रांगण में आयोजित हुई। जिसका उद्घाटन जनपद के लब्ध प्रतिष्ठित युवा शिशु रोग विशेषज्ञ व अणुव्रत समिति बिहार प्रदेश कार्यकारिणी के सदस्य तथा संभावना चेरिटेबल ट्रस्ट के संस्थापक सचिव डॉ. अंजेश कुमार ने किया। अध्यक्षता विद्यालय के प्रधानाध्यापक ने की। स्वागत भाषण अध्यापक राम नरेश शर्मा ने किया। अभियान के संयोजक प्रो. साधु शरण सिंह 'सुमन' ने संभागी विद्यार्थियों तथा ग्रामीण जनों को नशामुक्ति हेतु अनुप्रेक्षा, यौगिक क्रिया, दीर्घ श्वास प्रेक्षा का अभ्यास कराया। छात्र संसद के संयोजक राणा शत्रुघ्न सिंह, जिला संयोजक राजेश कुमार राजू, स्थानीय पंचायत के मुखिया, अणुव्रत समिति के सदस्य पं. सत्यनारायण चतुर्वेदी ने अपने विचार रखे। इस अवसर पर लगभग 500 लोगों ने नशामुक्ति का संकल्प लिया। इसी सप्ताह अथमलगोला हाई स्कूल प्रांगण में नशामुक्ति सभा विद्यालय के प्राचार्य राजेन्द्र दास की अध्यक्षता में आयोजित हुई। इसका उद्घाटन डॉ. पंकज कुमार ने किया। अणुव्रत आंदोलन के प्रति समर्पित मुरलीधर मेमोरियल ट्रस्ट के संस्थापक सचिव डॉ. पंकज कुमार का सम्मान किया गया। इस अवसर पर शिक्षिका पल्लवी सुमन, प्रो. साधु शरण सिंह सुमन, राजेश कुमार सिंह ने नशामुक्ति पर विचार रखे।

अणुव्रत समिति उदयपुर

उदयपुर, 19 जुलाई। अणुव्रत समिति उदयपुर की आगामी दो वर्षीय कार्यकारिणी का चुनाव डॉ. के.एल. कोठारी संस्थापक विज्ञान समिति के सान्निध्य में डागलिया भवन में संपन्न हुआ। इस अवसर पर समिति के वर्तमान अध्यक्ष गणेश डागलिया को 13वीं बार अणुव्रत समिति उदयपुर का निर्विरोध अध्यक्ष चुना गया। गणेश डागलिया ने आगामी दो वर्ष हेतु नई कार्यकारिणी निम्न प्रकार घोषित की

संरक्षक : गोविन्द्र गुप्ता (पुलिस महानिरीक्षक उदयपुर रेंज), उपाध्यक्ष : डॉ. कैलाश मानव, सवाईलाल पोखरना, शब्बीर के. मुस्तफा, माणक नाहर, मदन तातेड़, महामंत्री : अरुण कोठारी, कार्यकारी महामंत्री : राजेन्द्र सेन, सहमंत्री : अशोक राठोड़, वर्द्धमान मेहता, कोषाध्यक्ष : सुनिल खोखावत, प्रचार-प्रसार मंत्री : डॉ. सुरेन्द्र छगाणी, परामर्शक : डॉ. के.एल. कोठारी, जुगराज नाहर, एच.एल. कुणावत, ग्राम विकास संयोजक : मनमोहन राज सिंघवी, सहसंयोजक : राकेश चित्तौड़ा, जीवन विज्ञान संयोजक : डॉ. रंगलाल धाकड़, पर्यावरण संरक्षण संयोजक : आर.के. जैन, सह-संयोजक : शंकरलाल इण्टोदिया, नशामुक्ति संयोजक : डॉ. शोभालाल वैद, सहसंयोजक : डॉ. राजेश राठोड़, लेखक मंच संयोजक : डॉ. बी.एल. चावत, सहसंयोजक : पुरुषोत्तम पल्लव, सांप्रदायिक सौहार्द संयोजक : इकबाल हुसैन, सहसंयोजक : इन्दरजीत सिंह सच्चर, चिकित्सा शिविर संयोजक : अरविंद चित्तौड़ा एवं सदस्य : सुबोध कोठारी, सुरेन्द्र कुमार शेखावत, भंवरलाल गौड़, भंवर भारती, शांतिलाल सिंघवी।

तेरापंथ विकास परिषद् एवं अमृत संसद का
17 वां संयुक्त वार्षिक अधिवेशन

नई दिल्ली, 14 अगस्त। तेरापंथ विकास परिषद् एवं तेरापंथ अमृत संसद का 17वां संयुक्त वार्षिक अधिवेशन आचार्य महाश्रमण की पावन सन्निधि में 8 से 10 अक्टूबर 2011 (मध्याह्न) तक तेरापंथ भवन केलवा (राजसमंद) में आयोजित हो रहा है। वार्षिक अधिवेशन के इस महत्वपूर्ण आयोजन में संघीय विकासोन्मुखी चिंतन-मंथन में समस्त तेरापंथ अमृत सांसद सदस्यों की उपस्थिति सादर प्रार्थनीय है।

समस्त अमृत सांसदों से विनम्रः अनुरोध है कि अपने कार्यक्रम को अभी से व्यवस्थित कर अपने आगमन की अग्रिम सूचना हमें यथाशीघ्र अवगत करावें। अधिवेशन से संबंधित अन्य जानकारी हेतु आप कार्यालय से सम्पर्क करें

निवेदक :

लालचंद सिंघी — संयोजक : तेरापंथ विकास परिषद्

सम्पतमल नाहाटा — महामंत्री : तेरापंथ विकास परिषद्

: कार्यालय :

तेरापंथ विकास परिषद्

अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली-2

दूरभाषः 011-23231373, फैक्सः 23231363, मो.: 9999803066

www.terapanthinfo.com

त्रिदिवसीय व्यक्तित्व विकास शिविर

लाडनूं, 16 जुलाई। आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय के अंतर्गत संचालित त्रिदिवसीय व्यक्तित्व विकास शिविर में संभागी शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए प्रो. मुनि महेन्द्रकुमार ने वैज्ञानिक विश्लेषण के आधार पर व्यक्तित्व निर्माण की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने विद्यार्थियों के प्रयोगात्मक एवं निरंतर अभ्यासात्मक प्रशिक्षण पर बल देते हुए कहा मस्तिष्क में विद्यमान नीओ-कोर्टेक्स के सम्यक प्रशिक्षण के द्वारा ही हम प्रज्ञा या विवेक का विकास कर पाशावी वृत्तियों का परिष्कार कर सकते हैं। विद्यार्थी संकल्प एवं प्रशिक्षण द्वारा अपने जीवन व्यवहार में आवेश-नियंत्रण एवं आत्मानुशासन जैसे भावों का विकास करने में सफल हो सकते हैं। ये विद्यार्थी भविष्य में भारत के ऐसे नागरिक बन सकते हैं, जो न केवल अपने वैयक्तिक जीवन को शांति एवं आनन्द से परिपूर्ण करेंगे अपितु समाज और देश का कुशल नेतृत्व करने में भी सफल होंगे। मुनि अभिजीतकुमार ने प्रतिभा के विकास के लिए विभिन्न सूत्र बताए।

जैन विश्वभारती लाडनूं के कुलसचिव प्रो. जे.पी.एन. मिश्रा ने कहा विद्यार्थी जीवन में प्राप्त सही मार्गदर्शन एवं शिक्षा से ही भावी जीवन का निर्माण संभव है। उन्होंने छात्राओं को विशेष विद्यार्थी बनने का आह्वान करते हुए कहा कि लक्ष्य के प्रति समर्पण, सकारात्मक चिंतन, सहानुभूति, बौद्धिक क्षमता का विकास, जिम्मेदारी की भावना से ही जीवन में विशिष्टता प्राप्त की जा सकती है।

प्राचार्या डॉ. समणी मल्लिप्रज्ञा ने कहा जीवन में विकास करने के लिए आंतरिक व बाह्य व्यक्तित्व का निर्माण करना परम आवश्यक है। आत्मविश्वास एवं जीवन में सकारात्मक सोच से ही व्यक्ति आगे बढ़ सकता है।

शिविर में संभागी छात्राओं को प्रतिदिन विद्वानों द्वारा विशेष प्रशिक्षण दिया गया। डॉ. ममता खाण्डल ने त्रिदिवसीय शिविर की रिपोर्ट प्रस्तुत की।

शिविर को संबोधित करते हुए शिविर संयोजिका डॉ. शांता जैन ने कहा विद्यार्थी जीवन में प्राप्त सही मार्गदर्शन एवं शिक्षा से ही भावी जीवन का निर्माण संभव है। इस अवसर पर अनेक छात्राओं ने अपने अनुभव सुनाए। संयोजन तृप्ति जैन ने एवं आभार ज्ञापन डॉ. शांता जैन ने व्यक्त किया।

आचार्य महाश्रमण को संकल्प-पत्र भेंट

उदयपुर, 2 अगस्त। अणुव्रत महासमिति द्वारा उपलब्ध कराये गए विद्यार्थी अणुव्रत संकल्प पत्रों को राजस्थान महिला विद्यालय की प्राचार्या नलिनी जोशी ने 745 छात्राओं द्वारा भरवाकर अणुव्रत समिति उदयपुर के अध्यक्ष गणेश डागलिया के नेतृत्व में अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण को भेंट किए। गणेश डागलिया ने कहा उक्त संकल्प पत्रों के माध्यम से विद्यार्थियों ने निष्ठा, लगन, ईमानदारी से कार्य करने, नशामुक्त जीवन, अनुशासित जीवन, अहिंसा, विवेक, विद्या, विनम्रता को अपने जीवन में उतारने का संकल्प लिया।

आचार्य महाश्रमण ने उक्त संकल्प-पत्रों का अवलोकन करते हुए कहा मानव विकास के लिए विद्यार्थियों को संस्कारित करना नितांत आवश्यक है। अणुव्रत समिति उदयपुर गणेश डागलिया के नेतृत्व में सराहनीय कार्य कर रही है।

इस अवसर पर एच.एल. कुणावत, सुनिल खोखावत, भंवरलाल गोड़ एवं जमनालाल दशोरा उपस्थित थे।

प्रमाण-पत्र वितरण समारोह

शेरपुर, 27 जुलाई। अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र शेरपुर के तत्वावधान में महम्मदपुर गांव में छमाही रोजगार प्रशिक्षण केन्द्र निःशुल्क चलाया गया। कोर्स के समापन पर प्रमाण-पत्र वितरण समारोह व 57वां गांव निर्मित वस्तुओं की प्रदर्शनी एवं ग्राम श्री सेल मेला तथा नशा निवारण शिविर का आयोजन रविदास धर्मशाला में किया गया। कार्यक्रम का उद्घाटन जिला परिषद् बरनाला के चेयरमैन गुरतेज सिंह खुड्डी ने किया। संचालन एवं स्वागत भाषण अहिंसा प्रशिक्षण केन्द्र शेरपुर के निदेशक संजय भाई ने करते हुए अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान एवं अहिंसा प्रशिक्षण पर विस्तार से प्रकाश डाला। इस अवसर पर उपस्थित भाई-बहनों ने सामूहिक रूप से अणुव्रत गीत का संगान किया।

मुख्य अतिथि गुरतेज सिंह खुड्डी ने कहा गांव के नौजवान एवं युवतियों को आजीविका प्रशिक्षण देकर आत्मनिर्भर बनाना सार्थक कदम है। सिखलाई प्राप्त गुरप्रीत कौर, अमनदीप कौर एवं शारदा प्रवीण ने अपना अनुभव व्यक्त किया। पंचायत सदस्य गुरदेव सिंह ने पंजाब सरकार से मांग की कि निष्काम समाज सेवकों का सम्मान किया जाय। इस अवसर पर बुद्धिजीवी मंच के प्रधान मास्टर हरबंश सिंह, संत समाज के महासचिव एवं राष्ट्रीय अणुव्रत शिक्षक संसद पंजाब के संयोजक संत बाबा सुखविन्द्र सिंह टिब्बे वाला, नशा छुड़ाओ केन्द्र संगरूर के डायरेक्टर मोहन शर्मा, पंजाब प्रदेश कांग्रेस कमेटी के सदस्य दर्शन सिंह नैनेवाल, जगतार सिंह, गरीबन सिंह धन्ना ने अपने विचार व्यक्त किये। आभार व्यक्त मास्टर दीवान सिंह ने किया।

सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास

सूरत। साध्वी कुन्थुश्री ने एस.डी. जैन स्कूल सूरत में विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को संबोधित करते हुए कहा सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास का नाम है जीवन विज्ञान, जो कि मूल्यपरक शिक्षा का दर्पण एवं स्वस्थ जीवन का प्रशिक्षण है। जीवन विज्ञान शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं भावनात्मक विकास का आधार है। जीने की कला शिक्षा का ध्येय है। अपने चरित्र को उज्जवल रखना। विद्यार्थी भविष्य का निर्माता है। घर, परिवार, समाज, प्रांत एवं राष्ट्र का कर्णधार है। उसको सुसंस्कारी बनाना अभिभावक एवं शिक्षकों के हाथ में है। विद्यार्थी का जीवन खुली किताब के समान होना चाहिए। इस अवसर पर साध्वीश्री ने विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को अणुव्रत संकल्प करवाये। नशामुक्त जीवन जीने की प्रेरणा दी। जीवन विज्ञान के प्रयोग नियमित चलें ताकि विद्यार्थियों का सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास हो सके। साध्वी कंचनरेखा, साध्वी सुमंगला ने भी अपने विचार रखे।

योग प्रशिक्षक राकेश पाण्डेय ने महाप्राण ध्वनि एवं यौगिक क्रिया के प्रयोग कराये। सूरत सभा के अध्यक्ष बालचंद बेताला ने विद्यार्थियों को प्रेरित किया। अखिल भारतीय महिला मंडल की अध्यक्ष कनक बरमेचा, स्थानीय महिला मंडल की अध्यक्ष सरोज बांठिया, मधु देरासरिया, तेयुप अध्यक्ष किशोर भंसाली, अनिल समदड़िया, भारत भूषण जैन, राम बिलास जैन, गणेश नान्द्रेचा आदि ने विद्यालय परिवार को साधुवाद दिया और विद्यालय प्रबंधक कैलाश जैन एवं प्रधानाचार्य जुनेजा का साहित्य द्वार सम्मान किया गया। विद्यालय में जीवन विज्ञान का साहित्य भेंट किया गया। आभार ज्ञापन कैलाश जैन ने किया।

www.terapanthinfo.com

अध्यक्ष की कलम से

कैसे हो मानवीय एवं नैतिक गुणों का विकास

सामाजिक विकास में शिक्षा की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखें तो शिक्षा एवं चिकित्सा को सेवा एवं संस्कार का कार्य माना गया है। भारत में शिक्षा देना, ज्ञान देना गुरु-शिष्य परम्परा के अंतर्गत रहा है, जो समाज की व्यवस्था को मजबूत बनाता है। इसमें लाभ तथा लोभ के लिए कोई स्थान नहीं है। लेकिन आज के संदर्भ में शिक्षा को लाभ एवं लोभ का कार्य मान लिया गया है, जो मात्र व्यवसाय की तरह से कार्य कर रहा है। यही कारण है कि आधुनिक शिक्षा-पद्धति ने भारतीय सामाजिक संरचना की नींव को हिला दिया है। आज विद्यालयों और कॉलेजों में जिस प्रकार की शिक्षा दी जा रही है क्या यह शिक्षा हमें बेहतर जीवन एवं व्यवहार की शिक्षा दे पा रही है? शिक्षा का अर्थ व्यवहार में परिवर्तन लाना है। किंतु आज की शिक्षा शिक्षण और शिक्षार्थी शिक्षा के मूल भाव अर्थ को भूलते जा रहे हैं।

आज की शिक्षा नैतिकता को खोती जा रही है। विद्यार्थी पढ़ते तो हैं परन्तु उसे जीवन में नहीं उतारते हैं। कुल मिलाकर हम और हमारा शिक्षा तंत्र दिशाहीन होता जा रहा है। स्वामी विवेकानंद ने कहा था कि शिक्षा केवल उन जानकारियों का संग्रह नहीं है जो हमारे मस्तिष्क में ठूंस दिये जाते हैं, हमें चाहिए मनुष्यत्व का निर्माण करने वाली, जीवन का निर्वाण करने वाली तथा चरित्र का निर्माण करने वाली शिक्षा। कुल मिलाकर शिक्षा द्वारा विद्यार्थी के संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। यही मूल्यपरक शिक्षा होगी।

शिक्षा का ज्ञान एवं प्रशिक्षण प्राप्त कर प्रामाणिक रूप से अर्थाजन किया जाए या कोई व्यवसाय खड़ा कर उस ज्ञान और प्रशिक्षण के द्वारा समाज और राष्ट्रीय हित में उत्पादन बढ़ाएं। शिक्षा का दूसरा पहलू यह हो कि जिससे संस्कार संपन्न बनकर सद्गुणों से युक्त हो सही ढंग से जीवन जीने की कला में पारंगत हों। मूल्यपरक शिक्षा से ही देश को अच्छे डॉक्टर, इंजीनियर एवं वैज्ञानिकों का निर्माण अपेक्षित है। मूल्यपरक शिक्षा का उद्देश्य संस्कारों एवं सद्गुणों को विद्यार्थी के हृदय में अंकित करना है। विद्यार्थियों को प्रत्येक विषय के साथ मूल्यों की शिक्षा देना। जिसमें स्वच्छता, श्रमनिष्ठा, प्रामाणिकता समय प्रबंधन, अनुशासन, नियमितता, आत्मविश्वास धैर्य एवं व्यवस्थाप्रियता शामिल हों। मूल्यपरक शिक्षा में केवल विद्यार्थी को ही नहीं अपितु अभिभावकों को भी सहभागी बनना पड़ेगा। शिक्षा का एक निर्माणकारी स्वरूप बने, जिससे बच्चों में मानवीयता की संस्कृति स्थापित की जा सके। आज की बाजारीकरण शिक्षा में बौद्धिक विकास तो हो रहा है लेकिन भावात्मक विकास उस गति से नहीं हो रहा है। इसीलिए लोग अपनी बुद्धि का सकारात्मक सदुपयोग नहीं कर रहे हैं क्योंकि आज आदमी तर्क पर आ गया है। यही कारण है कि आदमी की सृजनात्मक दृष्टि न रह कर ध्वंसात्मक हो गई है। अणुव्रत की आचार संहिता को अपनाकर अनैतिकता और अप्रामाणिकता पर अंकुश लगाया जा सकता है—यही है आचार्य तुलसी द्वारा प्रवर्तित अणुव्रत आंदोलन का प्रमुख घोष जो हमें संयमः खलु जीवनम् का पाठ पढ़ाते हुए मानवीय और नैतिक गुणों से सराबोर कर सकती है।

मानवीय नैतिक मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा को समर्पित अणुव्रत आंदोलन विगत 62 वर्षों से देशभर में नैतिक विकास चरित्र-उत्थान व प्रामाणिकता के लिए कार्यरत हैं। अणुव्रत प्रवर्तक आचार्य तुलसी एवं अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाप्रज्ञ ने पूरे देश में पदयात्रा कर अणुव्रत का संदेश जन-जन में फैलाया। वर्तमान में उनके उत्तराधिकारी युवा मनीषी अणुव्रत अनुशास्ता आचार्य महाश्रमण की पावन सन्निधि में सैकड़ों कार्यकर्ताओं के साथ अणुव्रत जन-जन के लिए कल्याणकारी बने, यही हम सबका नैतिक दायित्व है।

गुरुदेव तुलसी ने अणुव्रत को उजागर कर एक नई रोशनी दी है। अणुव्रत प्रवर्तक आचार्य तुलसी की जन्म शताब्दी (2013—14) को दृष्टिगत रखते हुए हम अणुव्रत आंदोलन की दीर्घकालिक योजना पर भी विचार करें—

- अणुव्रत दर्शन को प्रचारित-प्रसारित करने की दिशा में ठोस कदम उठाये जाएं।
- अणुव्रत के कार्य को गति देने की दृष्टि से जीवनदानी अणुव्रती कार्यकर्ताओं का निर्माण हो।
- अणुव्रत ग्राम परियोजना के अंतर्गत कुछ गांवों का चयन कर शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, रोजगार की दिशा में प्रमुख रूप से कार्य हो।
- अणुव्रत समितियों को सशक्त बनाने की दिशा में आवश्यक कदम उठाये जायें इत्यादि।

अणुव्रत आंदोलन के रचनात्मक एवं संगठनात्मक पक्ष को मजबूत बना कर ही हम अणुव्रत आंदोलन की लौ को मशाल का रूप दे सकते हैं। आशा है मेरे आगामी दो वर्ष के कार्यकाल में आप सभी का अपेक्षित सहयोग प्राप्त होगा, इसी विश्वास के साथ।

— बाबूलाल गोलछा